होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम : एक पुनरावलोकन

— हृदय कान्त दीवान

यह पर्चा विज्ञान शिक्षण के सार्वजनिक स्कूलों में रिफॉर्म के एक प्रयास का विश्लेषण है और यह इसमें कई सारे मसलों, जिनके बारे में संकलन के अन्य हिस्सों के पर्चों में बात हुई, की झलकियों को देखा जा सकता है। पर्चा मध्य प्रदेश में सरकारी व्यवस्था की पार्टनरशिप में लम्बे समय तक चले विज्ञान शिक्षा में सुधार के प्रभाव का पुनरावलोकन, उनके अपने अनुभव व कार्यक्रम से जुड़े व्यक्तियों के साक्षात्कार पर आधारित है। पर्चे में लोगों की यादों में बसे कार्यक्रम की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख है जिसमें विज्ञान व उसकी समझ में अन्तर के अलावा कई ऐसे पहलू हैं जिनमें कार्यक्रम की जड़ों का निमार्ण किया। शिक्षकों के लिए सबसे प्रमुख बात कार्यक्रम से जुड़े लोगों का व्यवहार था। जहाँ कार्यक्रम में प्रयोग करने पर ज़ोर था पर उससे ज़्यादा महत्व संवाद का, सवाल करने की छूट का, सहकार का, सहृदयता व निकटता का था। उन्होंने साक्षात्कारों के हवाले से बताया है कि अन्तःक्रिया में ज्ञान का आडम्बर नहीं था और सबका व्यवहार धैर्यपूर्ण था। शिक्षक प्रशिक्षण में बराबरी का माहौल व तीखी चर्चाएँ थीं। यानी मित्रनुमा माहौल किन्तु विज्ञान की अवधारणाओं व पैडागॉजी के साथ कोई ढील नहीं। लेखक इस कार्यक्रम को एक मूवमैंट मानते हैं जिसमें बहुत–से लोग स्वैच्छिकता से शामिल हुए। इनमें कई तरह के लोग थे जिन्होंने अलग–अलग योगदान किया। इस कार्यक्रम से स्कूली विज्ञान शिक्षा की कल्पना व उसके संचालन के बारे में कई नये आयाम खुले। इसकी सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इस कार्यक्रम के साथ जुड़े शैक्षिक समूह ने सरकार के साथ अपनी शर्तों पर काम करना शुरू किया। हालाँकि इस प्रयास में राज्य के साथ सम्बन्ध बनते–बिगड़ते रहे परन्तु फिर भी इसे ढाँचे का भाग बनाने में थोड़ी बहुत सफलता मिली और कई बातें काफी लम्बे समय तक जारी रहीं। लेखक कहते हैं कि इसमें मिली सफलता ढाँचे का हिस्सा नहीं बन पाई और शायद बन भी नहीं सकती थी। शायद जो हो पाया वह ऐसा असाधारण घटनाक्रम था जो दोहराया नहीं जा सकता।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (हो.वि.शि.का. या H.S.T.P.) भारत में शिक्षा के एक अभिनव प्रयत्न के रूप में पहचाना जाता है। 1972 में स्कूल तक पहुँचा यह कार्यक्रम असल में अपनी जड़ें इससे पहले के कार्यक्रमों से लेता है (जोशी, 2004; सदगोपाल, 2000)।[1] इनमें सब से प्रमुख हैं – भौतिक विज्ञान के शिक्षकों के समूह का कार्यक्रम व नफील्ड कार्यक्रम। इन दोनों कार्यक्रमों में प्रयोगधर्मिता की बात शामिल है, जो हो. वि.शि.का. में भी है और इन दोनों से उभरने के कारण इसका दायरा भी इस मायने में बँध–सा गया था। हालाँकि ऐसा होने में कार्यक्रम के शैक्षिक संचालकों की समझ व प्रवृत्ति भी एक बड़ा कारण थी। यह बात महत्वपूर्ण है कि 70–80 के दशक में, पूरे विश्व में स्कूल के विज्ञान शिक्षण को ले कर अहम विचार–विमर्श व परिवर्तन की बात ज़ोरों पर थी और विज्ञान व टेक्नोलोजी से भौतिक विकास ही नहीं, सामाजिक समझ के विकास को ले कर भी काफ़ी आशाएँ रखी जा रही थीं। भारत में न सिर्फ़ कोठारी आयोग ने विज्ञान की भूमिका को रेखांकित किया था, बल्कि संविधान में भी वैज्ञानिक मानसिकता के विकास के महत्व को प्रस्तावना में जोड़ा गया था। इसलिए विज्ञान–शिक्षा में सुधार को ले कर कई तरह की सम्भावनाओं व उम्मीदों की बात की जा रही थी। होशंगाबाद विज्ञान के शुरू होने व इसमें लोगों के जुड़ने को इस सन्दर्भ में भी देखने की ज़रूरत है।

इसके शैक्षिक विकास की कहानी के कुछ महत्वपूर्ण पहलू सुशील जोशी की पुस्तक, *जश्न–ए–तालीम*, में पढ़े जा सकते हैं। इसी पुस्तक में यह भी देखा जा सकता है कि भौतिकशास्त्र के कुछ शिक्षकों द्वारा निजी व म्यूनिस्पेलिटि के स्कूलों में शुरू किये गये वैकल्पिक भौतिकी–शिक्षण के प्रयास के ख़त्म होने के बाद, 1972 में हो.वि.शि. का. 16 स्कूलों में शुरू हुआ। 1978 में एन.सी.ई.आर.टी. के आर.आई.ई., भोपाल संस्थान के सहयोग व समर्थन से यह पूरे होशंगाबाद ज़िले में पहुँचा और फिर 1983 में इसका एक और फैलाव हुआ, जिसमें मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र (इन्दौर व उज्जैन शिक्षा संभाग) के कुछ ज़िलों के कुछ शाला संकुलों के स्कूल शामिल हुए। इसके बाद 1988 में इन्दौर व उज्जैन शिक्षा संभाग व होशंगाबाद शिक्षा संभाग के बाक़ी सभी ज़िलों के एक–एक ब्लॉक के कुछ स्कूलों में इसकी शुरुआत हुई।

इस प्रकार इस कार्यक्रम का स्वरूप व संरचना इतनी व्यापक हो गयी कि यह उन कार्यक्रमों, जिनमें इसकी जड़ें कुछ हद तक हैं, से बिलकुल अलग ही बन गया। इसके बारे में जानने के लिए कई दस्तावेज़ हैं और हम इस पर ज़्यादा समय नहीं खर्चेंगे, लेकिन पर्चे के सन्दर्भ में उनके प्रमुख मसलों का एक संक्षिप्त चित्र ज़रूर प्रस्तुत करेंगे। एक और बात जो रेखांकित करना ज़रूरी है कि हो.वि.शि.का. की इन ऐतिहासिक जड़ों ने उसके स्वरूप को एक प्रकार से बहुत अधिक निर्धारित किया, परन्तु बहुत–से प्रमुख मामलों में यह बिलकुल विलग था। यह विलगता विज्ञान के

लोगों से रिश्ते से ले कर विज्ञान–कक्षा की संरचना व उसके ध्येयों तक थी। हालाँकि हो.वि.शि.का. में इन मसलों पर कई बार बहस हुई किन्तु उस ऐतिहासिक धरोहर से प्राप्त समझ व कार्य–पद्धति के कुछ स्तम्भ जस के तस ही रहे। हो.वि.शि.का. व इसके कार्यक्रमों में मार्गदर्शक के रूप में शामिल लोगों की रुचि, अनुभव व लक्ष्य परिवर्तित होते रहे। बहुत–से लोगों के लिए ये हो.वि.शि.का. शुरू करने वाले प्रणेताओं के लक्ष्यों से काफ़ी अलग थे (किशोर भारती व आर.आई.ई., 78; किशोर भारती रिव्यू, 1983; एकलव्य रिव्यू, 1994, 2003)।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम भारतीय शिक्षा के लिए कई मायनों में एक मील का पत्थर है। इसने शिक्षा में परिवर्तन की विभिन्न सम्भावनाओं को शुरू किया व भारत में शिक्षा के ढाँचे व शिक्षा की प्रक्रिया के सामने कई नये सवाल रखे। इस कार्यक्रम का पर्याप्त दस्तावेज़ीकरण तो नहीं हुआ है किन्तु कुछेक रिपोर्ट, लेख व एक सम्पूर्ण पुस्तक इसके रास्ते को कुछ हद तक बयान करते हैं। सन 1972 से ही इस कार्यक्रम ने कई पड़ाव देखे। जहाँ एक ओर इसे कई तरह का समर्थन हासिल हुआ, वहीं दूसरी ओर इसे तरह–तरह की आलोचनाओं का भी सामना करना पड़ा। 2003 में मध्य प्रदेश शासन ने इसे चयनित उच्च प्राथमिक शालाओं के लिए अनिवार्य कार्यक्रम से बदल कर ऐच्छिक (optional) कर दिया। उसके बाद धीरे–धीरे मध्य प्रदेश के शिक्षा–विभाग व स्कूलों में इसकी जगह ख़त्म हो गयी। यह उल्लेखनीय है कि शासन के इस निर्णय से पहले इसके उत्प्रेरण से शुरू हुए सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम और प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम को भी स्कूलों से हटा दिया गया था।

कार्यक्रम के पहलू

होशंगाबाद शिक्षण कार्यक्रम, शिक्षा–व्यवस्था (प्रणाली) में ढाँचागत परिवर्तन का एक प्रयास था। इसको समझने के लिए हम इसे तीन अलग–अलग पहलुओं के अन्तर्गत देख सकते हैं। हालाँकि कार्यक्रम के दौरान ये पहलू आपस में गुँथे हुए थे व इन्होंने एक–दूसरे को प्रभावित भी किया था। पहला पहलू शैक्षणिक है, जिसमें विज्ञान व शिक्षा की समझ– इसके अन्तर्गत पाठ्यचर्या के सभी पहलू मसलन पाठ्यक्रम, लक्ष्य, विषयवस्तु, शिक्षा–पद्धति, परीक्षा, पुस्तकें आदि –शामिल है। दूसरा है, ढाँचागत परिवर्तन। चूँकि हो.वि.शि.का. को शुरू करने वाले समूह ने इसे जमाने व व्यापक करने का प्रयास किया, अतः इस प्रयास का एक पहलू ढाँचे में काम कर रहे लोगों से मदद, भागीदारी, पहल व स्वामित्व खोजना, माँगना व प्राप्त करना रहा है। एक ऐसा प्रयास जिससे शिक्षा के ढाँचे में कार्य कर रहे लोगों में कार्य के प्रति सजगता, उसे सोच–समझ कर करने व आगे बढ़ाने की समझ बने। इसे कुछ हद तक भी सम्भव बनाने के लिए लोगों की इच्छा–शक्ति व सपनों को जगा कर उजागर करना ताकि वे बेहतरी का

प्रयास करें और उसे जारी रखें। उम्मीद थी कि इसी इच्छा–शक्ति से वे कार्यक्रम में आने वाली स्वाभाविक चिन्ताओं से जूझेंगे। हो.वि.शि.का. परिवर्तन का प्रयास था और इसका लक्ष्य केवल शिक्षण, शिक्षण–सामग्री व आकलन और शिक्षकों की मदद व क्षमतावर्धन का एक निश्चित ढाँचा हासिल करना नहीं था, बल्कि यह लगातार परिवर्तन व बेहतरी की मुहिम थी। अतः इसके बने रहने के लिए यह आवश्यक था कि परिवर्तन व सुधार में विश्वास करने वाले लोग लगातार इसमें शामिल होते रहें और इसके लिए उनकी प्रतिबद्धता व समय देने की इच्छा रहना आवश्यक था। यह लोग मध्य प्रदेश के स्कूलों में अथवा कॉलेजों में विज्ञान पढ़ा रहे शिक्षक, अन्य विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक व विज्ञान के उत्साही युवा अध्येता हो सकते थे। इनकी भूमिका प्रयास में शामिल सभी शिक्षकों में उत्साह बनाये रखने के लिए आवश्यक थी व नौकरशाही के सभी स्तरों के बीच व उनके शिक्षकों के साथ संवाद में पुल की तरह कार्य करने की थी। निर्णय–प्रक्रिया में स्कूली यथार्थ को शामिल करने के प्रयास के लिए यह आवश्यक था। तीसरा पहलू है, कार्यक्रम में स्थानीयता का पुट लाने का। इसके भी कई आयाम हैं और यह सभी मसले एक–दूसरे से गुँथे हैं।

पर्चे का आधार

इस पर्चे को लिखने के लिए मुख्यतः तीन स्रोतों का इस्तेमाल किया गया है। एक, कार्यक्रम के साथ लेखक के 25 वर्ष के अनुभव। दूसरा, वे दस्तावेज़ जो हो.वि.शि.का. के दौरान बने। इनमें फील्ड नोट्स, रिपोर्ट्स, मिनट्स आदि भी हैं और विभिन्न सरकारी आदेश व अन्य रिकॉर्ड्स भी। तीसरा, इससे गहरायी से जुड़े हुए लोगों से चर्चा है।

इस पर्चे में हम इन सब के आधार पर हो.वि.शि.का. को समझने का एक और प्रयास करेंगे, हालाँकि इसे शब्दों की समझ में बाँधना व समझना मुश्किल हो सकता है। कार्यक्रम को समझने के तीसरे स्रोत, इस कार्यक्रम से जुड़े लोगों से बातचीत, के आधार पर हम यह देखने की कोशिश करेंगे कि उन्हें अब इस कार्यक्रम के बारे में क्या कहना है। लोगों से बातचीत के लिए न्यादर्श को इस प्रकार चुना गया है कि इसमें वही लोग शामिल हैं जिन्हें कार्यक्रम के बारे में अनुभव याद हैं और शायद आज भी सभी का इससे सरोकार है। न्यादर्श में हर प्रकार के अकादमिक व्यक्तियों को शामिल किया गया है। ज़्यादा कोशिश उन शिक्षकों से बात करने की थी, जो विभिन्न रूप से होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में भागीदार थे। इसमें से कई स्त्रोत दल के सदस्य थे और कई ऐसे थे जो इसे पढ़ाते तो थे परन्तु स्त्रोत दल में नहीं थे। कुछ एक ऐसे लोगों से भी चर्चा हुई जो इससे पढ़ कर निकले थे। साक्षात्कार चार

सरल मुद्दों के इर्दगिर्द थे, किन्तु खुले रूप में थे व इसके दौरान किसी भी तरह का सम्बन्धित मसला व्यक्त किया जा सकता था। कुछ ऐसे लोगों से भी बातचीत की गयी जो उस अवधि में होशंगाबाद ज़िले में विकास का काम कर रहे थे परन्तु सीधे–सीधे शिक्षा से नहीं जुड़े थे। इसके अलावा शिक्षा को विषय के रूप में पढ़ा रहे कुछ अध्येताओं से भी चर्चा हुई जिनकी होशंगाबाद विज्ञान में सीधे–सीधे कोई भूमिका नहीं थी। इन अनौपचारिक चर्चाओं के नोट्स रखे गये। हर व्यक्ति से उसके मत की पुष्टि उसके द्वारा व्यक्त विचारों को लिखित रूप में भेज कर ली गयी। इस पर्चे का व इन साक्षात्कारों का लक्ष्य यह जानना नहीं है कि सामान्य जन इस कार्यक्रम के बारे में क्या जानते व मानते हैं। साक्षात्कार मुख्यतः उन्हीं लोगों का किया गया जो इस कार्यक्रम से अन्तरंग रूप से जुड़े थे। यानी वे इसके संचालन और क्रियान्वयन के किसी–न–किसी पहलू में शामिल थे। हालाँकि इनमें से आधे से अधिक सरकारी स्कूलों के शिक्षक थे। यह महत्वपूर्ण है कि बाद के वर्षों में बड़ी तादाद में प्राइवेट स्कूलों के इस कार्यक्रम में शामिल होने के बावजूद भी उनमें से कोई भी, किसी भी स्तर पर, इस कार्यक्रम के अवधारणात्मक व क्रियान्वनात्मक पुनर्निरीक्षण व मनन में शामिल नहीं था। उनके दृष्टिकोण व अनुभव को जानना महत्वपूर्ण है, पर वह एक अलग शोध है जिसे किया जाना चाहिए। इसी तरह से सामान्य जन इसके बारे में क्या समझे, उन्हें क्या याद है व उनका इस प्रयास का क्या विश्लेषण है, इस पर भी एक ज़्यादा बड़ा शोध करने की आवश्यकता है। इस पर कुछ काम दीवान, अग्निहोत्री, सक्सेना के नेतृत्व में किये गये शोध में हुआ था (दीवान, अग्निहोत्री, सक्सेना; 2005)।

इस पर्चे का एक लक्ष्य यह समझना भी है कि अलग–अलग ढंग से इस कार्यक्रम के संचालन में शामिल अकादमिक व्यक्तियों की इसके बारे में क्या समझ थी और वे किन बातों को इसकी विशेषताएँ मानते हैं। यह जानना भी कि उनकी आज इस कार्यक्रम की कमज़ोरियों व असफलताओं की क्या समझ है जिससे शिक्षा में ढाँचागत सुधार की सम्भावनाओं व अड़चनों को कुछ हद तक कुरेदा जा सके। इस कार्यक्रम की अकादमिक व्याख्या काफ़ी व्यापक है क्योंकि इसकी अकादमिक रचना में शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। वे इस कार्यक्रम को लागू करने वाले साधन मात्र नहीं थे, बल्कि इसके निर्माता भी थे। अतः वे भी अकादमिक दल में शामिल हैं।

पर्चे में प्रस्तुत बिन्दुओं का चुनाव उन बातों के आधार पर किया गया है, जिनकी झलक लोगों के वक्तव्यों में मिलती है। हालाँकि होशंगाबाद विज्ञान के दस्तावेज़ों में इन मुद्दों पर कई ढंग से व्याख्या[3] है और इसकी पाठ्यचर्या– जिसमें शिक्षण–पद्धति, प्रशिक्षण, परीक्षा आदि सभी शामिल हैं –पर भी काफ़ी कुछ लिखा गया है, किन्तु जो बातें इन चर्चाओ में सामने आयीं उन्होंने कुछ नये आयाम ज़रूर खोले हैं। ये आयाम लोगों के कार्यक्रम के प्रति रवैये व लगाव से तो प्रभावित थे ही, साथ ही उनके

इर्दगिर्द जो घट रहा था, उस पर उनकी प्रतिक्रियाओं व उससे निपटने के संघर्ष से भी प्रभावित थे। कई व्यक्तियों ने उन परिस्थितियों पर कई बार पुनः विचार–मंथन किया है और अपनी व अन्य लोगों की भूमिका को समझने की कोशिश भी की है। उनके कथनों में यह सब जद्दोजहद शामिल थी। यह महत्वपूर्ण है कि कई शिक्षकों के मन में उनकी भूमिका और उस समय का घटनाक्रम आज भी गहरायी से अंकित है।

कार्यक्रम के लक्ष्य

होशंगाबाद विज्ञान का मुख्य मक़सद क्या है : अकसर चर्चाओं में व औपचारिक मंचों पर भी हो.वि.शि.का. की बात करते समय जो मुख्य बातें सामने आती हैं, वे हैं – उसकी पुस्तकें, उसमें प्रयोग करवाना व खुली किताब परीक्षा। यही सब से प्रमुख पहलू माने गये व इनमें से पहले दो विचार के तौर पर व्यापक स्तर पर फैलाये भी गये। इनके अनुसार ही होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम, जो कई विश्वविद्यालयों में शिक्षक पूर्व तैयारी का हिस्सा भी बना था, की व्याख्या और चर्चा हुई। बहुत–से विश्वविद्यालयों के शिक्षक–प्रशिक्षण के लिए यह परीक्षा के प्रश्न का मसौदा भी था। इस पर पढ़ने के लिए उपलब्ध नोट्स में भी यही दो बातें प्रमुख थीं। इसकी इसी तथाकथित पद्धति विशेष पर बहुत–से शोध भी किये गये। इन शोधों में भी इसे सिर्फ़ कक्षा–शिक्षण की वैकल्पिक पद्धति यानी सस्ती सामग्री द्वारा प्रयोग करवाने के रूप में लिया गया और इसकी तुलना 'पारम्परिक' कहलाये जाने वाले तरीक़े यानी श्यामपट्ट पर पढ़ाये जाने से की गयी। आश्चर्य यह है कि इन सब शोधों में निष्कर्ष यही निकाला गया कि एक बार ही इस विधि से पढ़ा देने से बच्चे समझ जाते थे और देर तक याद रखते थे। इसीलिए शोधों के निष्कर्ष में इसे पारम्परिक पद्धति से बेहतर सिद्ध माना जाता था। यह सहज बोध का मसला है कि अवधारणा की समझ एक मर्तबा किये गये कार्य से नहीं बनती और यह भी कि दो पद्धतियों की तुलना करते समय पूछे गये सवाल दोनों में हुई कक्षा–कक्ष अन्तःक्रिया के लिए समकक्ष हों।

इस तरह के त्वरित निष्कर्ष और जाँचने व तुलना करने के तरीक़े इन शोधों की गुणवत्ता व परिकल्पना के बारे में गहरे सवाल उत्पन्न करते हैं। इनमें से एक बड़ा सवाल शिक्षा में इस तरह किये जा रहे इतने सारे अन्य शोधों पर भी उठता है। यहाँ इस बात को रखने का मुख्य मक़सद यही है कि कार्यक्रम के बारे में सोच अधूरी और रूमानी थी।

इस तरह की सोच कि बात सिर्फ़ कर के देखने की थी और एक बार ही स्वयं प्रयोग कर लेना सीखने के लिए पर्याप्त था, इस कार्यक्रम को सिर्फ़ एक शिक्षण–पद्धति के रूप में देखना था। यह माना जा सकता है कि मात्र शिक्षण–पद्धति के रूप में विचार के इस प्रचार व प्रसार को कार्यक्रम नहीं, बल्कि उसके लेबल के प्रचार व प्रसार के

रूप में देखा जाये तो उचित होगा। हालाँकि शोध के सन्दर्भ में हाल ही में किये गये अपने साक्षात्कार में अनिल सदगोपाल ने कार्यक्रम के 1983 व 1988 में किये गये 'सुगठित फैलाव' को भी इसी रूप में देखा। उनके इस वक्तव्य पर बहस की जा सकती है कि यह कितनी उचित तुलना है, पर इस तरह के शोधों में दिख रही समझ को आँकने पर उनके सन्दर्भ में यह 'पद्धति के लेबल' का रूपक सही लगता है। इस बात की व्याख्या सदगोपाल ने अपनी पुस्तक व लेखन में की है (सदगोपाल 2004; 2018)। कुल मिला कर इसके विशिष्ट पहलू अक्सर व्यापक विमर्श का हिस्सा नहीं बने। हालाँकि सदगोपाल[3] (2004), महेन्द्रु व सक्सेना[5,9] (2010) ने अपने लेखों व वक्तव्यों में कार्यक्रम के कुछ पहलुओं पर ज़्यादा व्यापक दृष्टि से रोशनी डाली है, पर उस समय के भी और बहुत बाद के सामान्य विमर्श में भी इसकी छवि सीमित ही थी। यहाँ तक कि कार्यक्रम से लम्बे समय तक अन्तःक्रिया के बाद भी इससे क़रीब से जुड़े कुछ लोगों के लिए भी इसके प्रमुख हिस्से यही थे। यद्यपि कई साक्षात्कारों में यह भी साफ़ रूप से सामने आया कि इससे क़रीब से जुड़े लोगों के लिए प्रयोग मात्र एक साधन थे व इसके लक्ष्यों एवं सिद्धान्तों में कई और अधिक महत्वपूर्ण पहलू हैं (सदगोपाल[4], महेन्द्रु व सक्सेना[5])।

हो.वि.शि.का. के पहलुओं की एक झलक

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षा कार्यक्रम का मुख्य पहलू शिक्षा के ढाँचे में एक ऐसा परिवर्तन करने का प्रयास था जिससे विज्ञान–शिक्षा का एक बेहतर नज़रिया व तरीक़ा सभी स्कूलों व सभी बच्चों तक पहुँच सके। इसमें न सिर्फ़ शैक्षणिक पहलू जैसे पुस्तकें, बच्चों के उपयोग की सामग्री, शिक्षण–विधि, शिक्षण की तैयारी, आकलन व परीक्षा, सीखने का नज़रिया आदि सम्मिलित थे, वरन ढाँचे में व्यवस्थित रूप से इसे संचालित करने की प्रक्रियाएँ भी शामिल थीं। कार्यक्रम में न सिर्फ़ कक्षा के भीतर 'सत्ता' के रिश्ते बदलने का प्रयास था, वरन शैक्षिक ढाँचे में शिक्षक के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन का भी प्रयास था। शिक्षक की परिस्थिति व स्कूली कार्य में आने वाली दिक़्क़तों की व्यवस्थित अभिव्यक्ति और उस पर विचार–विमर्श कर हल निकालने के प्रयास सम्भव बनाने की भी कोशिश थी। कक्षा का कार्य सुगमता से चले इसके लिए जिन भी व्यवस्थाओं की आवश्यकता थी, उनके लिए ढाँचे में प्रक्रियाएँ शुरू की गयी थीं। कार्यक्रम के ढाँचे के संचालन में विकेन्द्रीकरण व प्रशासनिक विमर्श की अहम भूमिका थी। कार्यक्रम की समझ के अनुसार शिक्षा के कार्य–संचालन की व्यवस्था में गुणवत्ता बनाये रखने के लिए कई ऐसे मंच थे जहाँ अलग–अलग कार्य के लिए ज़िम्मेदार वर्ग से आ रहे व्यक्ति एक साथ बैठ कर कार्य–व्यवस्था की परिस्थिति पर मंथन करते थे व आगे के लिए आवश्यक क़दम तय करते थे। इन मंचों पर न सिर्फ़ ब्लॉक व ज़िले स्तर के अधिकारी शिक्षकों के अनुभवों, विचारों, दिक़्क़तों व सुझावों से रूबरू होते थे,

बल्कि इसमें प्रदेश स्तर के अधिकारी भी शामिल होते थे। इन मंचों पर कार्यक्रम संचालन के प्रत्येक पक्ष व पद के सदस्यों की उपस्थिति के फलस्वरूप परेशानियों, अड़चनों व सम्भव हलों का तत्काल फ़ैसला हो पाता था। कई शिक्षकों ने कहा कि इस कार्यक्रम के सन्दर्भ में वे, शिक्षक अधिकारियों के साथ बराबरी से बात कर सकते थे। शिक्षकों ने यह भी बताया कि बाहर के लोगों के आ कर कार्यक्रम देखने से जोश आता था। जैसा कि कार्यक्रम की एक छात्रा, जिसने बाद में इस कार्यक्रम में कार्य भी किया, ने अपने लिखित मत में कहा कि यह पढ़ने–पढ़ाने का एक ऐसा वैकल्पिक मॉडल था, जो मौजूदा ढाँचे के जड़ हुए तौर–तरीक़ों से काम न करने की चाह रखने पर आप को कुछ और तरह से काम करने की सम्भावनाएँ इस्तेमाल करने और उनका सृजन करने की उम्मीद देता था।

प्रशिक्षण की गौण पाठ्यचर्या बनाम प्रत्यक्ष पाठ्यचर्या

कार्यक्रम के प्रत्यक्ष स्वरूप में हालाँकि विज्ञान की प्रकृति, विज्ञान सीखने के उद्देश्य, सीखने की प्रक्रिया, शिक्षा की सामाजिक बदलाव में भूमिका आदि पर चर्चा नहीं थी, किन्तु यह उसके करने के ढंग व व्यवहार में गहरायी से पैठी थी। शिक्षा लोकतान्त्रिक हो, सब के लिए हो व सब के ज्ञान का उसमें योगदान हो इन सिद्धान्तों का इस्तेमाल व्यवहार में था। इसी के कारण स्कूल के शिक्षक, विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर व अध्येता और सरकारी अधिकारी कार्यक्रम में बराबरी का व्यवहार महसूस कर पाये। प्रशिक्षण–स्थल व अस्थायी आवास पर सफ़ाई, सामग्री का रखरखाव व अन्य सभी कार्य सब को बराबरी से व साथ मिल कर करने होते थे। इसी तरह से शिक्षा के सैद्धान्तिक पहलुओं पर भी कोई प्रत्यक्ष सत्र नहीं थे, किन्तु पुस्तक–निर्माण, प्रशिक्षण की तैयारी, फीडबैक व अनुवर्तन और मासिक गोष्ठियों के दौरान इन मसलों पर, व्यवहारिक अनुभवों के विश्लेषण के समय, चर्चा होती थी। किन्तु इन चर्चाओं में सैद्धान्तिक अवधारणाओं का अकादमिक विश्लेषण नहीं था। स्रोत शिक्षकों की अतिरिक्त तैयारी में भी उनकी विज्ञान विषय की समझ को ही ज़्यादा गहरा करने का प्रयास होता था। ये सारे मसले कार्यक्रम में गुँथे हुए थे परन्तु प्रत्यक्ष चर्चाओं में ये ज़्यादा सामने नहीं आते थे। यह एक तरह से छिपा पाठ्यक्रम था, जो कार्यक्रम में सम्मिलित था। इसके अप्रत्यक्ष होने, परन्तु यथार्थ में रहने, के कारण ही बहुत अलग–अलग पृष्ठभूमियों के लोग इसमें शामिल हो सके और इस पर अपनी मिल्कियत महसूस कर पाये। जैसा कि एक लिखित रिस्पोंस में व्यक्त किया गया कि इससे प्रक्रिया में शामिल लोग शिक्षा का अपना परिप्रेक्ष्य विकसित कर पाये। सीखने और पढ़ाने की समझ विकसित कर पाने के साथ–साथ इनकी मौजूदा प्रक्रियाओं में कमी देख पाये और उसके बारे में कुछ करने की ज़रूरत को भी समझ पाये।

प्रक्रिया की झलक

संवाद, उम्मीद व पहल के आदान–प्रदान और बदलाव व समस्या–निदान की यह कोशिश सिर्फ़ प्रशासनिक व ढाँचागत मसलों तक ही सीमित नहीं थी। संगम केन्द्र[6] के ढाँचे के क्रियान्वयन का प्रयास व उसमें निर्धारित मासिक गोष्ठी[7] का आयोजन शिक्षकों के बीच वैचारिक व भावनात्मक अन्तःक्रिया का मंच था। साक्षात्कार में लगभग सभी लोगों ने इस कार्यक्रम को लोगों के बीच आपसी रिश्तों की एक महत्वपूर्ण प्रेरणा बताया। उनमें से कई लोगों ने कहा कि इस कार्यक्रम ने उन्हें 'विज्ञान सीखना' सिखाया। इस कार्यक्रम में पूर्व माध्यमिक शाला के विज्ञान से उन्होंने वह सब सीखा, जो उन्होंने स्नातक तक भी नहीं सीखा

था। कार्यक्रम में शिक्षक की तैयारी व उसको कक्षा की परिस्थितियों में मदद करने के मसले का भी कई लोगों ने ज़िक्र किया। लोगों ने प्रशिक्षण को गहरा व सख़्त (rigorous) बताया और यह भी कहा कि उसमें पढ़ाने वालों का रवैया बहुत ही शालीन व सरल था। वे बहुत धैर्य से लोगों की बात सुनते थे चाहे वह कितनी भी त्रुटिपूर्ण व ग़ैर–तार्किक क्यों न हो और वे लोग जल्दी से जवाब नहीं देते थे। कोशिश यह थी कि लोग अपनी समझ विकसित कर पायें। इसे एक शिक्षक ने यह कह कर समेकित किया कि प्रशिक्षण समेत कार्यक्रम का हर हिस्सा उत्तर देने पर नहीं, वरन नये सवाल सोच पाने व उनके हल खोजने के लिए रास्ता ढूँढने की क्षमता विकसित करने पर केन्द्रित था। इसी तरह से कार्यक्रम से पढ़े एक छात्र ने बताया कि उसे आज भी इस कार्यक्रम में किये गये प्रयोग, परिभ्रमण व चर्चाएँ याद हैं। आज जब वह बच्चों को प्रयोग करवाता है तो बच्चों की आँखों की चमक व उत्साह देख कर उसे अपना बचपन याद आ जाता है। हालाँकि उसने यह भी कहा कि कार्यक्रम के बारे में उसके अन्य साथियों की भावनाएँ अलग हो सकती हैं, पर सब को मज़ा बहुत आता था। हो.वि.शि.का. की एक अन्य पुरानी छात्रा ने कहा कि इससे बच्चे अवधारणाएँ

---

[6] संगम केन्द्र : हो.वि.शि.का. में संगम केन्द्र, ब्लॉक की एक ऐसी उच्च माध्यमिक शाला में ही होता था जिसमें विज्ञान पढ़ाया जाता हो। यहाँ एक अनुभवी शिक्षक, जिसने हो.वि.शि.का. का प्रशिक्षण लिया होता था, पदस्थ होता था। संगम केन्द्र पर ही मासिक गोष्ठी होती थी व यह किट–वितरण, प्रायोगिक परीक्षा, शिक्षकों को अकादमिक सहयोग देने जैसे सभी पहलुओं के लिए ज़िम्मेदार होता था।

[7] मासिक गोष्ठी – हो.वि.शि.का. में पढ़ा रहे विज्ञान–शिक्षकों की मासिक बैठक संगम केन्द्र पर होती थी। इसमें शाला की रोचक बातों, उलझनों व विज्ञान के नये मसलों पर चर्चा होती थी। इसमें संगम केन्द्र शाला से जुड़े 25–35 माध्यमिक स्कूलों के विज्ञान–शिक्षक शामिल होते थे। प्रत्येक शाला से एक प्राथमिक शिक्षक मासिक गोष्ठी में आता था।

ज़्यादा अच्छे–से सीखते थे और यह उनमें नयी परिस्थितियों में कुछ–कुछ अलग कर के देखने की जिज्ञासा पैदा करता था।

जैसे मध्य प्रदेश के शिक्षाविदों ने शिक्षकों की क्षमता, भागीदारी, पहल व परिवर्तनगामी प्रयास के बारे में समझा, उसी तरह से विश्वविद्यालयों से आये वैज्ञानिकों ने भी बहुत कुछ समझा। उन्होंने यह जाना कि गाँव के स्कूलों में संसाधनों की उपलब्धता वैसी नहीं है, जैसी उनकी प्रयोगशालाओं में है। यह भी जाना कि विज्ञान के प्रयोगों के लिए सरल उपकरण गढ़े जा सकते हैं और एक ही प्रयोग कई ढंग से किया जा सकता है। यह भी कि विज्ञान समझने की प्रक्रिया कई तरह के रास्तों से हो कर जाती है। अतः विज्ञान एक सामूहिक गतिविधि के रूप में ज़्यादा अच्छे–से सीखा जा सकता है। उन्होंने यह जाना कि शिक्षकों व बच्चों से संवाद के लिए उन्हें बच्चों व शिक्षकों की भाषा सीखनी होगी। तभी संवाद सम्भव हो सकेगा। इस संवाद से न सिर्फ़ शिक्षकों व बच्चों ने विज्ञान सीखा, वरन वैज्ञानिकों ने भी अपनी विज्ञान की समझ में इज़ाफ़ा किया और अवधारणात्मक स्तर पर ज़्यादा स्पष्टता पायी। उन्होंने यह भी जाना कि शब्दों का चयन व तकनीकी शब्दों का जाँच–परखकर उपयोग विज्ञान समझने में लाभदायक होता है। यह भी कि चूँकि अधिकांश शिक्षक स्नातक अथवा हाई स्कूल तक भी विज्ञान पढ़े नहीं थे, अतः सिर्फ़ बेहतर सामग्री से काम नहीं चलेगा। यानी एक ओर तो 'बेहतर सामग्री क्या होगी' यह समझ बनाने के लिए बच्चों व शिक्षकों का सहयोग चाहिए। और दूसरी तरफ़ यह समझ विकसित करने के लिए उन्हें शाला में व कक्षा में समय गुज़ारना होगा, खुद बच्चों को प्रयोग करते देखना होगा और स्कूल व गाँव के सम्बन्ध को समझना होगा। यह भी समझना होगा कि प्रयोग करते समय बच्चों, शिक्षकों व स्वयं उनके मन में ऐसे सवाल उठते हैं जिसके लिए पढ़ने व खोजने की ज़रूरत होती है। यह भी कि सामान्य प्रक्रियाओं से भी गहरे शोध लायक सवाल उभर सकते हैं। उन्हें यह भी समझ में आया कि प्रचलित व्यवस्था में शिक्षक के लिए बेहतर ढंग से तैयारी कर के विज्ञान पढ़ा पाना सम्भव नहीं है। उसके पास विज्ञान के लिए उपलब्ध समय में प्रयोग व चर्चा करवाना सम्भव नहीं है, उसके पास विज्ञान सीखने के लिए बच्चों को स्कूल से बाहर ले जाने की प्रशासनिक आज़ादी नहीं है, उसके पास संसाधन व उन्हें रखने के लिए कोई जगह भी नहीं है और न ही उसके पास कक्षा में उठे प्रश्नों व अप्रत्याशित अवलोकनों को समझने का प्रयास कर पाने के लिए समय व मदद उपलब्ध है। इसीलिए, इन सब को, कार्यक्रम के क्रियान्वयन पहलुओं में बुनियादी आवश्यकताओं के रूप में जोड़ने का प्रयास किया गया। शिक्षकों को शैक्षिक समर्थन देने के लिए अनुभवी व विज्ञान के ज्ञाता व्यक्ति द्वारा नियमित अनुवर्तन, मासिक गोष्ठी चर्चा और सवालीराम के ढाँचे की कल्पना की गयी। एक तरह से वैज्ञानिक भी प्रयोगशालाओं व विश्वविद्यालयों के दायरे से बाहर

निकल कर प्रयोग रचित करने व उनसे उत्पन्न सवालों से जूझने के तरीक़े से रूबरू हुए और इसके महत्व को बेहतर ढंग से समझ पाये। उन्होंने, कुछ हद तक, कक्षा में विज्ञान सीखने और बच्चों की भाषायी समझ, उसके उपयोग में आत्मविश्वास व क्षमता के बीच के सम्बन्ध का एहसास भी किया। इस सब से उनकी बच्चों व शिक्षक के प्रति समझ बढ़ी और उनके प्रति संवेदनशीलता व आदर भी।

होशंगाबाद विज्ञान के मुख्य गुण

होशंगाबाद विज्ञान कार्यक्रम में समय–समय पर लिखे गये दस्तावेज़ों, उसकी पुस्तकों व शिक्षक–प्रशिक्षण की रिपोर्ट से कई बातें उभरती हैं। इनमें विज्ञान विषय की समझ व उसे पढ़ाने व समझने के तरीक़े से सम्बन्धित बातें भी हैं। कार्यक्रम उस समय प्रचलित, जानकारियाँ याद कर के लिखने वाली विज्ञान शिक्षा की समझ के विरुद्ध था। यह विज्ञान को तथ्यों, नियमों व सिद्धान्तों का पुलिन्दा नहीं मानता था और इसमें विज्ञान की प्रक्रिया सीखने को भी विज्ञान की शिक्षा का एक प्रमुख हिस्सा समझा गया था। इसके शैक्षिक पहलुओं में प्रयोग जमाने से शुरू कर के, अवलोकन लेने, उन्हें व्यवस्थित करने व उनका विश्लेषण कर निष्कर्ष निकालने तक सभी पहलू शामिल थे। पारस्परिक विमर्श व बहस कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था। जैसा कि एक रिस्पॉन्स में व्यक्त हुआ कि यह बच्चों को साथ–साथ काम करने के व बातचीत के मौक़े दे कर सहज बनाता था और उन्हें तनावरहित होने में मदद करता था। साथ ही यह शिक्षक से बात करने और सवाल पूछने में लगने वाले डर को भी कम करता था। यह बच्चों को सीखने में रुचि के साथ संलग्न करता था और बच्चे खुले अन्तःक्रियायुक्त माहौल में खुद करने, स्वयं परिणाम और निष्कर्ष तक पहुँचने के प्रयास का साहस कर सकते थे। इसकी पुस्तक ऐसी अन्तःक्रियायुक्त पुस्तक थी जो विज्ञान सीखने की नयी राह दिखाती थी, जिसमें रटना नहीं था।

इस कार्यक्रम को कई तरह से सरलीकृत कर के प्रस्तुत किया जाता रहा है। इनमें से प्रमुख अति सरलीकरण यह है कि इसमें बच्चे सारा ज्ञान स्वयं के प्रयोगों से सीखेंगे व शिक्षक को कुछ नहीं बताना है। यानी यह 'कन्सट्रक्टविस्ट' पद्धति है या खोज विधि है। इस कार्यक्रम के लिए चयनित पंच लाइन ने भी शायद यह भ्रम पैदा किया। यह कहना कि 'मैंने जब तक कर के नहीं देखा तब तक सीखा नहीं', एक अति संकुचित दृष्टिकोण (और चरम मत अथवा पोजिशन) है। इस सरलीकृत मान्यता से यही आभास मिलता है कि सिर्फ़ 'कर के देख लिया तो समझ गये'। यह दोनों तरह से ग़लत है : कर के देखने की अनिवार्यता के सन्दर्भ में भी और उसके एकमात्र सीढ़ी होने के स्तर पर भी। किन्तु साक्षात्कार में शामिल लोगों के वक्तव्य में बार–बार यही

दिखा कि उनके लिए सीखने की इससे बहुत अलग व गहरी सोच थी। उनके लिए अन्य पहलू बहुत महत्वपूर्ण थे।

असल में कार्यक्रम की प्रक्रिया व चर्चाओं में यह स्पष्ट रूप से व्यक्त होता रहता था कि बहुत–से प्रयोग कक्षा में कर के नहीं देखे जा सकते और हमेशा स्वयं कर के सीखना आगे बढ़ने की गति को रोक सकता है। यह भी कहा तो जाता ही था कि प्रयोग के बाद भी सीखने के लिए चर्चा अनिवार्य है। पर फिर भी कार्यक्रम के क्रियान्वयन व प्रस्तुतीकरण में भी इस मसले पर दुविधापूर्ण स्थिति बनी रही। जहाँ एक ओर इस कार्यक्रम की रचना व क्रियान्वयन में हर चीज़ स्वयं खोजने अथवा प्रयोग को ही एकमात्र आधार मानना शामिल नहीं था, किन्तु वहीं, दूसरी ओर ज़ेहन में कहीं 'बाल वैज्ञानिक' की भी कल्पना थी और वही पुस्तक का नाम भी था। यह समझा जाता था कि इस तरह से ज़ोर देने से कक्षा में प्रयोग होने की सम्भावना ज़्यादा होगी, बच्चों को प्रयोग करने का मौक़ा मिलेगा। यह भी समझा जायेगा कि प्रयोग ज्ञात निष्कर्षों को दोहराना मात्र नहीं होते। इसी तरह के संशय और समझ को ले कर प्रयोग करवाने पर ही ज़ोर दिया गया। शायद यही वजह थी जिससे कि प्रयोग की अनिवार्यता पर अति ज़ोर देना आवश्यक समझा गया हो। यह इसलिए भी प्रमुख हुआ क्योंकि इसे कक्षा में परिवर्तन के ठोस प्रमाण के रूप में आँका भी जा सकता था और एक तरह से यह सीखने की वैकल्पिक समझ का कई मायनों में पहला क़दम भी था। किन्तु इसका बहुत सरलीकृत उपयोग हुआ और ऐसा इसलिए क्योंकि इसमें 'करने' के तात्पर्य को ख़ास ध्यान दे कर अलग से स्पष्ट नहीं किया गया है। अक्सर 'करने' का अर्थ सामग्री की उपलब्धता व उसका उपयोग करना, हाथ से कुछ करना– जिसमें प्रयोग शामिल है –ही माना जाता रहा है।

ऐसा नहीं है कि इस प्रश्न से हो.वि.शि.का. समूह अनभिज्ञ था। पुस्तक के प्रयोगों और उससे प्रस्तावित चर्चाओं व सवालों में विज्ञान करने व विज्ञान सीखने में प्रयोग से इतर तरीक़ों की जगह–जगह पर झलक है[6] (सक्सेना 2006)। किन्तु जो व्यापक तौर पर प्रचलित हुआ, उसमें 'करने' को प्रयोग व उससे जुड़ी सभी प्रक्रियाओं की तरह ही देखा गया। ऐसा शायद इसलिए भी था कि यह सब से स्पष्ट व प्रत्यक्ष परिवर्तन था। प्रयोग करना विज्ञान सीखने में शामिल अन्य विश्लेषणात्मक अथवा संश्लेषणात्मक कार्यों से सरल भी है। यह भी महत्वपूर्ण है कि बच्चों के विकास की दृष्टि से पूर्व माध्यमिक स्तर पर, वैसे भी ज़्यादा उलझा या ज़्यादा अमूर्त विज्ञान नहीं होना चाहिए। इसीलिए भी हो.वि.शि.का. में प्रयोग को ही महत्वपूर्ण माना गया। फिर भी होशंगाबाद विज्ञान कार्यक्रम की विचारात्मक समझ में प्रयोग शैक्षिक गतिविधि की तरह और किट टी.एल.एम. की तरह नहीं थे, वह विज्ञान विषय की ज़रूरत के स्वरूप में थे[7] (दीवान, 1995; दीवान, 2017)। प्रयोग इसलिए क्योंकि अवलोकन करना, उन्हें समझ कर

व्यवस्थित करना व उनसे व्यापक नियम व अवधारणा तक पहुँचना ही विज्ञान की प्रक्रिया है। किट–सामग्री न होने पर उसी काम के लिए कुछ और इस्तेमाल हो सकता है, उसी सामग्री की ज़रूरत नहीं। यह सब बातें हो.वि.शि.का. की रचना व क्रियान्वयन में कुछ हद तक थीं। किन्तु प्रयोग व उससे खोज कर, कई बार शायद खींच कर भी, उत्तर 'स्वयं खोजने' पर भी बल था। इससे ज़ाहिर है कि हो.वि.शि.का. की मंशा में हालाँकि यह स्पष्टता रही हो कि विज्ञान व उसकी शिक्षा, प्रयोग करने व किट जमाने से कहीं अधिक है और इसके कई और पहलू हैं, किन्तु इस अधिक में और क्या आता है यह बहुत अच्छे–से रेखांकित नहीं था।

प्रयोग, अवलोकन, विश्लेषण व मनन

ऐसा कहा जा सकता है कि हो.वि.शि.का. की रचना में प्रयोग का महत्व दो अलग–अलग आयामों के कारण था। इसमें उल्लेखित रूप से स्पष्ट शैक्षिक सिद्धान्तों को अधिकांश उपयोगकर्ताओं ने अधूरे रूप से ही समझा व उपयोग किया। प्रयोग के अवलोकनों में विविधता को पहचानना, उन्हें रेखांकित कर, उन पर मंथन कर के कारण ढूँढना इत्यादि कक्षा–प्रक्रिया तो क्या; सभी प्रशिक्षण–कक्षाओं का भी हिस्सा नहीं बन सके। हालाँकि, कई मौक़ों पर अप्रत्याशित अवलोकन पूरे स्रोत दल में सोच व उद्वेलन का कारण बनते थे, पर यह स्थिति अगली प्रशिक्षण–कक्षा और स्कूल की कक्षा में न हो, यही प्रयास किया जाता था। एक व्यवस्थित योजनाबद्ध ढंग से प्रयोग हों और उन पर अपेक्षित अवलोकनों के आलोक में योजनाबद्ध चर्चा हो, यही प्रयास होता था। हालाँकि यह अपेक्षा थी कि चर्चा पूरी तरह तयशुदा नहीं होगी व उसमें खुलापन व नवीनता रहेगी, किन्तु प्रयोग व उससे जुड़े सवालों की रचना बहुत ध्यान से होती थी।

इसी तरह की कोशिश कक्षा में किये गये प्रयोगों के अवलोकनों के सन्दर्भ में भी थी। यही सुनिश्चित करने की क़वायद थी कि अवलोकन हमेशा अपेक्षित रूप में ही आयें। हालाँकि इसमें कुछ हद तक ऐसी भी कल्पना थी कि यह एक खुला कार्य होगा जिसमें अलग–अलग अवलोकन आ सकते हैं और कक्षा के बच्चे अपने–अपने अवलोकनों के सन्दर्भ में अपने–अपने निष्कर्ष देंगे और उन पर चर्चा करेंगे। उसके बाद उचित अवलोकनों व उनके लिए सम्भव तर्कों को मिल कर पहचाना जायेगा। इसमें शिक्षक की कोशिश होगी कि वह चर्चा को सार्थक दिशा में मोड़ता रहे। लेकिन लक्ष्य सही अवलोकन व सामान्यीकरण का था। यानी सोचने व करने का एक हद तक खुला दायरा, पर कक्षा व अन्य ज़रूरतों व परिस्थितियों के चलते सीमाओं में बँधा हुआ। इसमें खोज की भावना की अनिवार्यता को इस प्रकार शामिल किया गया था जिसमें सीखने वालों को अपने अवलोकनों के अनुसार आवश्यक व सम्भव कार्य–कारण

सम्बन्ध ढूँढने हैं और उनके लिए तर्क गढ़ने हैं। किन्तु यह सम्बन्ध क्या होंगे, हालाँकि यह पुस्तक में नहीं लिखा है पर ये पूर्व निर्धारित हैं। शिक्षक का काम चर्चा को उन पहलुओं तक ले जाना है जो अपेक्षित हैं। शिक्षक–प्रशिक्षण के दौरान भी और विद्यार्थियों के आकलन की प्रक्रिया में भी प्रयोग से इतर प्रक्रियाओं का उपयोग कर अवधारणाओं, कार्य–कारण सम्बन्ध, व्यापक व्यवहार–पैटर्न आदि पर सोचने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। इसमें पहले से लिये गये आँकड़ों का अध्ययन व विश्लेषण, किसी परिस्थिति की व्याख्या या किसी बात की सत्यता के लिए प्रमाण व तर्क देना जैसे अभ्यास सम्मिलित हैं। यह अलग–अलग स्तर के प्रश्नों की मदद से भी किया जाता था। प्रशिक्षण के दौरान दिये जाने वाले लघु प्रश्न व आकलन के बहुत–से प्रश्न ऐसे होते थे जिनके कई उत्तर हो सकते थे। दिये गये तथ्यों व ज्ञात अवधारणाओं के आधार पर किया गया विश्लेषण अलग–अलग हो सकता था। हालाँकि इससे विज्ञान में सत्यता की कसौटी (truth criteria) के रूप में प्रयोग की भूमिका स्पष्ट रूप से उभरती थी। फिर भी प्रयोग की यह भूमिका हर जगह एक समान नहीं थी।

शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण में कार्य करते हुए और बच्चों के लिए बनाये गये प्रयोगों के लेखक दल के सदस्यों ने वास्तविक कक्षाओं में भी प्रयोग कर के जाँच की। इस तरह के प्रयास से लगातार नये ढंग सोचे जाते रहे व ये नये ढंग पुस्तक में सम्मिलित हो कर कक्षाओं में इस्तेमाल होते रहे। इनमें नये प्रयोग भी होते थे और कई बार चूँकि किसी अवधारणा पर ठीक से विमर्श करने के लिए उचित प्रयोग सम्भव नहीं हो पाते थे और चर्चा के लिए अवलोकन भी नहीं होते थे, अतः इस सब के अभाव में कुछ मॉडल भी विकसित किये जाते थे जो उस मुद्दे को उभार सकें (साधना 2006, वही)। इसके कई उदाहरण एकलव्य की वेबसाइट पर दिये गये प्रश्नपत्रों व लघु प्रश्नों में देखे जा सकते हैं। जैसे शिक्षक–प्रशिक्षण में उपयोग हुआ एक लघु प्रश्न यह था : "कैसे सिद्ध करेंगे कि हमारे शरीर में खून बहता है?" कहने का तात्पर्य यह है कि इस कार्यक्रम की शिक्षा–पद्धति में विभिन्न तरीक़े थे व मूल प्रयास सिर्फ़ प्रयोग नहीं, वरन सार्थक संवाद हो पाने के लिए किसी भी प्रकार से उचित चिन्तन–सामग्री उपलब्ध करवा पाने का था। कार्यक्रम में अपने ढंग से सिखाने के अर्थ, उसके लिए सम्भव तरीक़े व औज़ार, सीखने वाले का आकलन आदि सभी पहलुओं पर कुछ हद तक सोचा गया था।

कई विमर्शों में हो.वि.शि.का. को निर्माणवाद कार्यक्रम के रूप में परिभाषित कर इसकी तारीफ़ की गयी। ऐसा शायद इसलिए हुआ क्योंकि इसकी शिक्षण–पद्धति में स्वयं कर के सीखने पर ज़ोर था। हालाँकि जैसे ऊपर भी कहा गया कि, इसकी रचना में स्वयं पता करने का ज़ोर उस ख़ास दायरे के अन्दर था जिसमें पढ़ने वालों को सवाल इस क्रम में रच कर दिये जाते थे जिनसे वह उत्तर तक पहुँच सकें व उस तक पहुँचने

में शिक्षक को उनकी मदद करनी होती थी। और इस प्रक्रिया में शिक्षक आवश्यकतानुसार अतिरिक्त प्रयोग अथवा सामान्य अनुभवों का उपयोग कर के विमर्श को आगे बढ़ाने में योगदान देता था। 'निर्माणवाद' और 'बाल वैज्ञानिक तैयार करने की मुहिम', दोनों ही बच्चों पर ज्ञान स्वयं खोजने का बोझ डालती थीं, जो कि हो.वि.शि.का. की मूल भावना में नहीं था। हो.वि.शि.का. की शिक्षण–पद्धति में बच्चों व शिक्षकों के लिए अकेले अथवा मिल कर नये प्रयोग व रास्ते खोजना ज़रूरी नहीं था, हालाँकि वे कभी–कभी नये प्रयोग खोज सकते थे। उन्हें ज़्यादातर वही प्रयोग करने थे, जो पुस्तक में ध्यान से रच कर रखे गये थे व उन्हीं निष्कर्षों तक पहुँचना था जो ज्ञात थे। जैसा कि कुछ साक्षात्कारों में सामने आया इसको बनाने वाले लोगों में शिक्षा के दार्शनिक पहलू व उसके सामाजिक पहलुओं की समझ लगभग नगण्य थी। कार्यक्रम के प्रणेता व उसे आगे बढ़ाने वाले न तो ज्ञानमीमांसा समझते थे और न ही उनका शिक्षा की बुनियादी विचार–पद्धतियों से सरोकार था। वे अपने नैसर्गिक या सहज ज्ञान, समझ व अनुभव के आधार पर ही आगे बढ़ने का प्रयास कर रहे थे। हो.वि.शि.का. के दस्तावेज़ों में भी इन मसलों का कोई विश्लेषण नहीं था। और शिक्षा के किसी भी स्थापित फ्रेमवर्क में सोचने के प्रति लगभग एक तिरस्कार का भाव भी था। अपने जोश व विश्वास के कारण वे वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य की सोच को पूरी तरह नज़रअन्दाज़ ही करते रहे। और यह अक्खड़पन अन्य पहलुओं में भी झलकता था।

सवाल पूछना

कार्यक्रम में निहित विज्ञान की समझ व इसकी शिक्षण–पद्धति में सवाल पूछने की आज़ादी महत्वपूर्ण थी। विषय सीखने का अर्थ, दिये गये सवालों के उत्तर जानना मात्र नहीं था, वरन अवधारणाएँ समझ कर नये सवालों के उत्तर ढूँढना, नये सवाल व नये उत्तर सोच पाना था। इसके लिए यह आवश्यक माना गया कि सीखने वाले समय–समय पर अपनी समझ को अभिव्यक्त करेंगे। शुरू में साथियों के साथ टोली में, फिर पूरे समूह में और फिर लिख कर। टोलियों मे प्रयोग करना व चर्चा करना इसीलिए एक महत्वपूर्ण पहलू था। एक प्रकार से कार्यक्रम में चर्चा व अपनी समझ को प्रस्तुत करने का बहुत महत्व था। संवाद और चर्चा, समझने व अवधारणा–विकास का एक ज़रूरी हिस्सा था। यह कल्पना थी कि सामूहिक चर्चा में न सिर्फ़ टोलियाँ अपने अवलोकन, उनसे बनी अपनी समझ प्रस्तुत करेंगी व उसके पक्ष में तर्क रख अपनी बात को पुख़्ता करने का प्रयास करेंगी, वरन चर्चा में नये प्रश्न भी सामने आयेंगे। वे नये प्रयोग व नये अवलोकन भी कर सकते हैं जिन पर चर्चा हो सकेगी। यानी एक खुलेपन की कल्पना थी जिसमें शिक्षक भी नये प्रयोग करवा सकते थे, नये प्रश्न पूछ सकते थे और बच्चे भी। हालाँकि इस खुलेपन की व्यावहारिक सम्भावनाओं व उसकी सीमा पर लोगों के मत अलग–अलग थे। इस कार्यक्रम से पढ़े एक छात्र

ने बताया कि उसने इस कार्यक्रम से बहुत कुछ सीखा। उसे इस कार्यक्रम का महत्व और अपने पर असर अब धीरे–धीरे और स्पष्ट होता दिख रहा है व उसके मन में इस कार्यक्रम के बुनियादी तरीक़ों व सिद्धान्तों का और इसका महत्व भी बढ़ रहा है। उसने इसके तहत नये–नये प्रयोग करने व अपने आसपास खोजबीन करने की बात कही। उसने यह भी कहा हो.वि.शि.का. विज्ञान रटने या सिर्फ़ पढ़ने से तो फ़र्क़ था ही, वरन सिर्फ़ कुछ अवधारणाओं को समझ लेने से भी आगे था। इसने सभी सीखने वालों को विज्ञान की अवधारणाएँ व पद्धति समझ कर नयी परिस्थिति में लागू करना सिखाया। उसके शब्दों में इसकी मुख्य बात समझते हुए 'अवधारणा सीखने' से बढ़ कर 'समझ के इस्तेमाल' तक थी।

कार्यक्रम की कक्षा–व्यवस्था

इस कार्यक्रम में शामिल लोगों के ज़ेहन में कई बातें गहरे से पैठी हैं। फिर भी इनमें शामिल पहलुओं के स्वरूप व पारस्परिक महत्व में अन्तर है। एक ओर तो प्रयोग करना व स्वयं अवलोकन करना महत्वपूर्ण है। साथ ही साथ टोली में चर्चा भी उतनी ही अहम है। टोली में कार्य करने ने कक्षा के आर्किटेक्चर को बदलने के महत्व को स्थापित किया और सीखने–सिखाने के दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। कक्षा में प्रयोग की हलचल व टोली में कार्य होने से कक्षा की बैठक–व्यवस्था और अनुशासन दोनों पर ही एक नया दृष्टिकोण सामने आया। विद्यार्थियों को साथ काम करना था व मिल कर सोचना था। अतः कक्षा की बैठक पंक्तियों में न हो कर समूहों और टोलियों में थी। इसके अलावा किट का सामान लाना, रखना, प्रयोग करना, साफ़ करना आदि के लिए हलचल की आवश्यकता थी। सबको अपने अवलोकन लिखने थे, अपने तर्क व निष्कर्ष लिखने थे। अतः बोर्ड पर कम लिखा जाना था व शिक्षक को कक्षा के सामने ही नहीं खड़ा रहना था, बल्कि घूमना भी था। कुल मिला कर यह व्यक्तिगत सीखने, चुपचाप बैठे रहने व शिक्षक का वक्तव्य सुन अथवा श्यामपट्ट पर देख कर उसे कॉपी में उतारने, दिये ज्ञान को उतारने व पुस्तक व शिक्षक से सभी उत्तरों की अपेक्षा करने से बहुत अलग था। अतः न सिर्फ़ इसमें बैठक–व्यवस्था, अनुशासन आदि फ़र्क़ थीं किन्तु ज्ञान के वर्चस्व व उस तक पहुँचने के विमर्श में भी अन्तर था।

सीखने की इस प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका को समझना महत्वपूर्ण है। उसकी भूमिका के लिए सुगमकर्ता, सीखने में सहयोगी, मार्गदर्शक जैसे शब्द अपर्याप्त हैं। उसकी ज़िम्मेदारी कक्षा की योजना रच कर, उसके क्रियान्वयन व बच्चों के साथ अन्तःक्रिया की थी। कुल मिला कर हो.वि.शि.का. में कक्षा–व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण

पहलू था – बच्चों की आपसी अन्तःक्रिया। इसके लिए बैठक–व्यवस्था के साथ–साथ अनुशासन व सीखने के ढंग पर प्रचलित विचारों में भी परिवर्तन ज़रूरी समझा गया। कार्यक्रम की यह एक बुनियादी मान्यता थी जो लगभग सभी लोगों ने अलग–अलग ढंग से व्यक्त की। किसी ने इसे टोली में सीखने की भावना बताया, किसी ने इसे सहकार (co-operation and collaboration) व उससे सीखना कहा, किसी ने इसे एक–दूसरे से सीखने का मॉडल बताया और किसी ने कहा कि यह संवाद की महत्ता प्रदर्शित करता है। इन सभी में इस कार्य में हर विद्यार्थी के विचार, तर्क व अन्य सभी क्रियाओं में भागीदारी सुनिश्चित करने के प्रयास की ध्वनि शामिल है। यानी कार्यक्रम की यह अपेक्षा थी कि बच्चे अपने अवलोकनों, विचारों व तर्कों को स्पष्ट व सटीक रूप से रखना सीखें और अन्य लोगों के विचारों व तर्कों को ध्यान से सुन कर समझना सीखें व चर्चा करने के नियमों के दायरे में काम करने का प्रयास करें।

स्पष्ट है कि इसमें प्रयोग मात्र एक ऐसी 'गतिविधि' नहीं है जिसमें बच्चे अथवा शिक्षक मानसिक तौर पर सतर्क भागीदार नहीं हैं। इसमें सीखने को सरल अथवा/व आनन्द और खेल से भरा बनाने का प्रयास नहीं था। प्रयोग इसलिए कि बच्चे सीखने में मेहनत कर सकें व अपना दिमाग़ लगा सकें। यह मेहनत और मशक्कत के बाद सीखने का आनन्द था, न कि ज्ञान को टुकड़ों में प्रदर्शित करने व सरलता से कुछ पता चलने का। शिक्षक मात्र साधन प्रदाता नहीं थे, उनकी सतर्क व जटिल शैक्षणिक भूमिका थी। यह अपेक्षा थी कि सभी सावधानियों के बावजूद टोलियों के प्रयोगों में कुछ विविधता होगी जिनके कारण ढूँढने में शिक्षक को भी मदद करनी होगी। इस पूरे कार्य में शिक्षक सभी समूहों में जायेंगे और हर समूह में हो रही क्रिया को देखेंगे व उसमें आवश्यक मदद देंगे। उन्हें कक्षा में जो भी हो रहा है उस पर तत्काल हस्तक्षेप कर के दिशा देनी होती थी। बच्चों के अवलोकन, उस पर उनके विश्लेषण और समेकीकरण को समझ कर आगे बढ़ाना होता था। वे सिर्फ़ तटस्थ और मूक दर्शक नहीं थे जो सिर्फ़ सीखने के साधन उपलब्ध करवा रहे थे। उनकी भूमिका, समझ के स्वतः उत्पाद के लिए उपयुक्त सामग्री व व्यवस्था उपलब्ध करवाने वाले सुगमकर्ता में सम्मिलित समझ से बहुत फ़र्क़ है। कक्षा की रचना, प्रक्रिया, शिक्षक की भूमिका और इनके आधारों व अन्य पहलुओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता हुआ कार्यक्रम का कोई दस्तावेज़ नहीं मिला। शायद ऐसा करना, कार्यक्रम के लिए ग़ैर–ज़रूरी ही नहीं ग़लत भी माना गया। हालाँकि शिक्षक–क्षमतावर्धन पर बाद में हुए कार्य के अनुभव के आधार पर कई अध्येताओं व शिक्षा में काम कर रहे लोगों का स्पष्ट मत है कि इन सब शब्दों पर एक गहरी सामाजिक और दार्शनिक समझ की आवश्यकता है, जो सरल भाषा में हो और इन पर शिक्षक सीधे संवाद कर सकें।

शिक्षक–प्रशिक्षण

इस कार्यक्रम का एक और महत्वपूर्ण हिस्सा शिक्षक की अकादमिक तैयारी करवाना, पढ़ाने की पद्धति की तैयारी करवाना, सबलीकरण व उसके कार्य में सहयोग करना था। इसमें प्रशिक्षण की एक वैकल्पिक समझ थी व उसे मूर्त रूप से रचने के प्रयास में कई ऐसे पहलू थे जो उस समय के लिए बिलकुल नये थे, पर जो हमेशा प्रासंगिक रहेंगे। उदाहरण के लिए, इसमें प्रशिक्षण के दौरान शिक्षकों का पाठ्यपुस्तकें पढ़ कर प्रयोग करना व अवलोकनों के आधार पर उसी तरह से विश्लेषण करना व सवालों के बारे में सोचना शामिल था जो विद्यार्थियों से कक्षा में अपेक्षित होता था। हालाँकि उनके तैयारी–प्रशिक्षण में कुछ अतिरिक्त प्रयोग व अतिरिक्त प्रश्न भी थे, किन्तु अपेक्षा यह थी कि शिक्षक उस माहौल का अनुभव करें जो उन्हें कक्षा में बनाना था। प्रशिक्षण में लगातार नये प्रश्नों पर चर्चा होती रहती थी चूँकि प्रयोगों को करने में नयी–नयी परिस्थितियाँ दिखती थीं। पुराने प्रयोगों को अलग ढंग से अधिक सरल बनाने के प्रयास होते रहते थे। इन प्रयोगों के कारण व नये–नये लोगों के आने से प्रशिक्षण दे रहे स्त्रोत दल के सदस्यों को लगातार नये–नये अनुभव व चर्चाएँ हासिल होती रहती थीं। एक तरह की शैक्षिक नवीनता व जीवन्तता उनमें आती रहती थी, जो शिक्षकों तक भी पहुँचती रहती थी। हर स्त्रोत दल अपने ढंग से विमर्श का तानाबाना बुनता था और न तो यह अपेक्षा थी कि सभी सत्र एक जैसे होंगे और न ही इसको सम्भव अथवा उचित माना जाता था। यह बड़े स्तर पर शिक्षक–प्रशिक्षण के कैसकेड मॉडल[8] का एक शक्तिशाली विकल्प था। इसमें स्रोत दल की तैयारी, रचना व उनसे अपेक्षा, सभी के आधार फ़र्क़ थे और प्रशिक्षण के उद्देश्यों का कथन भी अलग था। यहाँ इस्तेमाल किया गया 'वैकल्पिक' शब्द यह इंगित करने के लिए है कि शिक्षकों को विज्ञान की समझ के अलावा सबलीकरण अपनी समझ को करवाना, तर्क करना व स्कूल में नये ढंग से पढ़ाना और नयी व्यवस्था करवाना, जिसमें अपनी ज़रूरतें व दिक़्क़तें सामने रखना करना भी था। इस सब की तैयारी प्रशिक्षण में परोक्ष ढंग से अपेक्षित थी।

प्रशिक्षण में न सिर्फ़ स्रोत दल के अन्दर विभिन्न पृष्ठभूमियों से आये लोगों के बीच खुला संवाद था, वरन बिना किसी भी प्रकार की हायरारकी के स्रोत दल और शिक्षकों

---

[8] कैसकेड मॉडल का अर्थ है कि पहले से तयशुदा प्रशिक्षण के ढाँचे व मॉड्यूल को एक छोटे समूह के साथ बाँटा जाता है और फिर यही समूह उसे आगे कुछ अन्य लोगों तक ले कर जाता है। और फिर यह लोग असली प्रशिक्षणार्थियों को उसी मॉड्यूल के आधार पर उसी ढंग से प्रशिक्षित करते हैं। यानी प्रशिक्षण का ढाँचा रचने वालों का प्रशिक्षणार्थियों से लगभग न के बराबर सम्पर्क होता है।

के बीच भी बराबरी का माहौल बनाने का प्रयास था। हालाँकि यह स्पष्टता थी कि प्रशिक्षण–योजना बनाने, उसके लिए टीम की तैयारी करवाने व कक्षाओं में अवधारणाएँ स्पष्ट हों आदि की ज़िम्मेदारी व उनकी कक्षा के संचालन व दिशा तय करने में ऐसी पूरी बराबरी नहीं थी। स्रोत दल में भी पारस्परिक इज़्ज़त के बावजूद भूमिकाएँ व दायरे बँटे थे। बराबरी के इस माहौल में सब कुछ न कुछ सीखते थे। जैसे विश्वविद्यालय में पढ़ कर आये शोध–छात्र व अन्य स्नातकोत्तर भागीदारों ने बताया कि इसमें कार्य के दौरान उन्होंने अपने विषय को ठीक से समझा। उन्होंने 'विज्ञान क्या है' यह भी जाना व अपने पूरे ज्ञान का एक प्रकार से पुनः परीक्षण किया। इन प्रशिक्षणों ने स्कूलों, उनके शिक्षकों व व्याख्याताओं को विश्वविद्यालयों के लोगों व उसके माहौल से भी जोड़ा। यह मंच दोनों ही समूहों के लिए लाभदायक था। साक्षात्कारों में सभी ने इससे सीखने को रेखांकित किया। कुछ लोगों ने यह कहा कि यहीं आ कर उन्होंने विज्ञान समझना सीखा। कई लोगों ने बताया कि इससे उन्होंने शिक्षा व उसके ढाँचे के बारे में, प्रशिक्षण की व्यवस्था के बारे में समझा और इसी तरह के अन्य कई पहलू लोगों ने रेखांकित किये।

प्रशिक्षण में शिक्षकों व स्रोत दल के रहने की व्यवस्थाएँ सम्मानजनक स्तर तक सुनिश्चित करने के लिए प्रशिक्षण से पूर्व व प्रशिक्षण के दौरान कई प्रक्रियाएँ की जाती थीं। इसके अलावा अन्य व्यवस्थाएँ यथा प्रशिक्षण–कक्ष, किट–रखरखाव व वितरण, परिभ्रमण–स्थल आदि जैसी व्यवस्थाएँ भी की जाती थीं। परन्तु सब से महत्वपूर्ण हिस्सा था अकादमिक पुनरावलोकन व अगले दिन की तैयारी का।

इस तैयारी में शिक्षकों के साथ आवश्यक धारणाओं पर चर्चा होती, उनकी प्रतिक्रियाओं, सवालों व समझ पर चर्चा होती व दिन–भर के कार्य के विश्लेषण के आधार पर अगले दिन की तैयारी होती। हालाँकि समूह अलग–अलग ढंग से तैयारी करते थे, किन्तु प्रयोगों का आशय, क्रम व उनके अवलोकनों, निष्कर्षों आदि पर चर्चा की सम्पूर्ण योजना बनायी जाती थी। यह जड़ता वाला बँधा हुआ कार्यक्रम नहीं था, वरन इसमें कक्षा की परिस्थिति के आधार पर फेर–बदल होते थे। यानी न सिर्फ़ योजना तब तक के अनुभव को शामिल कर के ही तैयार होती थी, परन्तु वह भी प्रशिक्षण–कक्षा की परिस्थिति में बदलती ही थी। यह तैयारी स्रोत दल के शैक्षणिक, व्यवहारगत व विकास में बहुत उपयोगी थी और शिक्षकों के प्रति आदर व मदद की प्रतिबद्धता भी दिखाती थी। हालाँकि तैयारी में अक्सर प्रयोग कर के देखे जाते थे और लगभग सभी प्रयोग किये जाते थे, ताकि सामग्री व पुस्तक के निर्देशों को जाँचा जा सके। परन्तु तैयारी का मुख्य फोकस कौन–से प्रयोग होंगे, किन मसलों पर (अवलोकनों, प्रश्नों, अवधारणाओं) पर फोकस करना है, इस सब की एक साझा समझ बनाना था। इसमें उद्देश्यों, अवधारणाओं व ग़लत धारणाओं पर चर्चा भी होती थी और हर सदस्य से

अपनी समझ व्यक्त करने की अपेक्षा भी होती थी। यही चर्चाएँ सभी में अवधारणात्मक स्पष्टता विकसित करती हैं व संवाद, चर्चा, तर्क और साथ काम करना जैसे गुणों के साथ–साथ समझ व व्यक्तित्व को भी तराशती हैं। इस तराशने में आत्मीयता के साथ–साथ सख़्त रगड़ाई व तीखी चर्चाएँ भी होती थीं। इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण पहलू बहसों का पूरे आक्रामक रवैये व जोश की भावना (passion) के साथ होना था। अक्सर यह तीखी बहस करने वाले सदस्य कार्यक्रम के अनुभवी व अग्रणी समझे जाने वाले होते थे। उनके बीच का यह वार्तालाप हालाँकि उनके लिए मुद्दा–आधारित व उसी समय तक का होता था और उनके बीच के रिश्तों को तल्ख़ नहीं करता था, पर यह स्पष्ट नहीं है कि इसने अन्य लोगों पर क्या असर डाला और उन्हें किस तरह से तैयार किया। यह भी स्पष्ट नहीं है कि इसने अन्य लोगों को किस तरह की भूमिकाएँ लेने को बाध्य किया। यह संवाद की सामान्य समझ व प्रक्रिया से बहुत अलग था, जहाँ विचारों के मतभेद व्यक्त करना व तर्कों के आधार पर अपने मत बदलने की संस्कृति वयस्कों में अक्सर नहीं थी (मदान, 1996)। हालाँकि सभी जवाब देने वालों ने फीडबैक बैठकों को आत्मीयता और भागीदारी का एक गहरा प्रदर्शन माना, परन्तु इस तीखेपन और सतही तल्ख़ी की वज़ह से बाक़ी लोगों का इसमें शामिल होना सम्भव नहीं हो पाया और इससे ठहर कर सुनने व चर्चा करने की संस्कृ ति ठीक से नहीं विकसित हो पायी। इसमें शायद बहुत–सी महिलाओं और कम आक्रामक लोगों की भागीदारी भी पूरी तरह से नहीं हो पायी। इसके बावजूद जो हुआ वह इसमें शामिल सभी तरह के लोगों के लिए अविस्मरणीय व जीवन–दर्शन बदलने वाला अनुभव था।

प्रशिक्षण में शिक्षक की तैयारी का आधार यही था और उसमें यह प्रयास था कि शिक्षक उन अवधारणाओं से पुनः जूझें, जो उन्होंने कभी पढ़ी थीं। पर चूँकि स्कूल में पढ़ाए जाते समय इन्हें समझने की अपेक्षा नहीं थी, अतः ऐसा कोई प्रयास उस समय नहीं किया गया था कि इन अवधारणाओं को समझने के मौक़े बनाने के लिए कुछ किया जाये। हो.वि.शि.का. में प्रशिक्षण–कक्षाओं का मुख्य ध्येय यह था कि सम्मिलित शिक्षक इन अवधारणाओं को समझने का प्रयास करें। इसमें यह प्रयास भी शामिल था कि वे यह समझें कि गहराई से समझने का अर्थ क्या होता है। प्रशिक्षण का फोकस इस पर होता था कि शिक्षक यह भी एहसास कर पायें कि गहराई से समझने की क्या प्रक्रिया हो सकती है और इसमें सीखने और सिखाने वाले की क्या भूमिका हो सकती है। चूँकि कार्यक्रम में, शिक्षा–विभाग द्वारा पूरे प्रदेश के लिए निर्धारित पाठों की पहले से चली आ रही सूची को बदला नहीं गया था (पाठ्यक्रम के मायने उस समय सिर्फ़ अध्यायों के नाम तक ही सीमित समझे जाते थे), अतः वही नाम रख कर अलग ढंग से, किताबों के अध्यायों में अवधारणाएँ विकसित की गयी थीं। प्रशिक्षण का

कार्य शिक्षक के लिए इसी किताब का जीवन्त अनुभव बनाना था। जैसा हमने पहले भी कहा कि शिक्षा विषय के प्रति नासमझी से उत्पन्न अनादर के कारण इस प्रशिक्षण में शिक्षा के बुनियादी कहलाये जाने वाले पहलुओं को छुआ ही नहीं गया। इस पूरी प्रक्रिया में एक और कमज़ोरी यह थी कि इसमें शिक्षकों में पढ़ने की आदत विकसित करने का कोई व्यवस्थित प्रयास नहीं था, न तो कोई पठन सामग्री थी और न ही पढ़ने के लिए कोई समय। विज्ञान की पाठ्यपुस्तक के अलावा कुछ और पढ़ने की अपेक्षा नहीं थी, हालाँकि कार्यक्रम का विश्वविद्यालयी स्रोत दल स्वयं बहुत पढ़ता था, परन्तु वह पढ़ना भी अधिकांशतः विज्ञान के सन्दर्भ में ही था।

पूरा लम्बा प्रशिक्षण सिर्फ़ उन अध्यायों को लगभग उसी तरह करने पर केन्द्रित था जैसे उन्हें कक्षा में किया जाना था। यहाँ चर्चाओं व प्रश्नों का स्तर अलग होता था व वरिष्ठ शिक्षकों की ज़िद से जूझा जाता था, जिसमें वे अपनी ग़लत धारणाओं को ले कर बहस करते थे व कई बार इसलिए तर्क करते थे जिससे वे स्रोत समूह को परेशान करें, उनकी परीक्षा ले सकें और समूह में अपना रुतबा जमा सकें। कुल मिला कर प्रशिक्षण में शिक्षा की सैद्धान्तिक समझ, उसका सामाजिक व आर्थिक पहलू, विज्ञान की धारणा, पैडागॉजी, नीति अथवा अन्य किसी पहलू पर अलग से कोई चर्चा नहीं होती थी। जो भी बातचीत होती थी वह प्रयोगों पर और उन के अवलोकनों व उन से उठ रहे प्रश्नों पर चर्चा के दौरान ही होती थी। इसी के कारण कार्यक्रम को चलाने वाले दल के प्रमुख व अधिकांश सदस्य विज्ञान विषय के ज्ञाता व उसे पढ़ाने वाले थे। उनके अनुसार शिक्षा में सुधार के प्रयास में विषय का ज्ञान, सामाजिक संवेदनशीलता व परिवर्तन का जज़्बा आवश्यक व पर्याप्त था। यह एक कारण हो सकता है जिससे कार्यक्रम का न तो शैक्षिक दस्तावेज़ीकरण हुआ और न ही व्यापक शिक्षा या विज्ञान शिक्षा में व्यापक सन्दर्भ में चल रहे नये विचारों व विमर्शों के आलोक में उसका कुछ भी परिमार्जन।

प्रक्रिया बनाम उत्पाद

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के सन्दर्भ में विज्ञान सीखने में 'प्रक्रिया बनाम उत्पाद' पर बहुत चर्चा होती थी। कई चर्चाओं में इसके सन्दर्भ में यह कहा जाता था कि कार्यक्रम में वैज्ञानिक प्रक्रिया की समझ को विकसित करना ही शैक्षिक प्रयास का मुख्य लक्ष्य था। यह भी समझा जाता था कि बच्चे कर के सीख लेते हैं क्योंकि वे उसे प्रत्यक्ष देख पाते हैं। इस विवेचन में कई पहलू गड–मड हैं। एक तो 'वैज्ञानिक प्रक्रिया क्या है' का ही सवाल है और दूसरा यह है कि क्या वह ही सीखने की प्रक्रिया भी है? हो.वि.शि.का. में प्रयोगों का महत्व, वैज्ञानिक प्रक्रिया की समझ के लिए नहीं था, बल्कि उसकी ज़्यादा ज़रूरत सीखने की प्रक्रिया के चरण के रूप में थी। दूसरा पहलू यह है कि इस कार्यक्रम में प्रयोग का दर्जा क्या है? कुल मिला कर क्या वह

विषय को रोचक व ग्राह्य बनाने का प्रपंच है या वह वैज्ञानिक अवधारणाओं के विकास की कड़ी के रूप में है या फिर वह विज्ञान की प्रक्रिया की समझ विकसित करने के प्रयास के रूप में है? हालाँकि कई जगह पर और चर्चा में भी कुछ लोगों ने *बाल वैज्ञानिक* में पाठ–नियोजन को 'बच्चे वैज्ञानिकों' के रूप में वर्णित किया, किन्तु असल में इसमें प्रयोग का दायरा विज्ञान की समझ के विकास के ज्ञानमीमांसात्मक (एपिस्टमोलोजिकल) पक्ष को नहीं छूता। प्रयोगों की रचना व उन पर किया जाने वाला कार्य वैज्ञानिक पद्धति का अनुपालन कर नया ज्ञान रचने के लिए नहीं है।

किन्तु ये प्रयोग, महज़ 'रोचकता' बढ़ाने व 'आनन्द' के लिए भी नहीं हैं। यह सीखने वाले को अवधारणा समझने के लिए एक तर्कपूर्ण व प्रमाणयुक्त रास्ता दिखाते हैं। इसे कई बार भ्रमात्मक रूप से संरचनावादी (कन्सट्रक्टविस्ट) तरीक़ा भी बताया जाता है, किन्तु इसे वैसा नहीं माना जा सकता। यह तरीक़ा विज्ञान सिखाने का एक सुनियोजित व्यवस्थित तरीक़ा है, जिसमें विज्ञान की पैडागॉजी की समझ है। इस पैडागॉजी में विज्ञान सिखाने का अर्थ एक पहलू है और दूसरा पहलू है उच्च प्राथमिक कक्षाओं में विज्ञान सिखाये जाने के लिए सम्भव पद्धति। प्रयोग, दो कारणों से एक ज़रूरी हिस्से के रूप में हैं। एक तो अवधारणाओं का विकास कर पाने के लिए आवश्यक अनुभव एकत्रित करने के प्रयोजन से और दूसरा विज्ञान की प्रक्रिया के कुछ पहलुओं का अनुभव करवाने के लिए। हालाँकि जैसा ऊपर भी बात हुई है, इसमें पहला बिन्दु अधिक प्रमुख है और इसे विज्ञान की प्रक्रिया समझने का रास्ता नहीं माना जा सकता।

प्रयोग शामिल करने में कुछ और पहलू भी थे, जैसे करने में प्रयोग सरल हों व उनमें सामग्री व स्थान के उपयोग की आवश्यकता भी लचीली हो। यह माना जाता था कि सिर्फ़ सुसज्जित प्रयोगशाला में सम्भव प्रयोगों का कोई अर्थ नहीं है। दूसरा, ऐसे प्रयोग जिन्हें जमाना व करना बच्चों के लिए मुश्किल है अथवा जो असुरक्षित हैं, उनसे भी बचा गया था। यह समझ थी कि प्रयोग की ताक़त इसी में है कि बच्चों द्वारा कम साधनों में उसे किया जा सके व उसके अवलोकन करना व उनमें निष्कर्षों तक पहुँचना बच्चों के लिए सम्भव हो, चाहे इसमें कहीं–कहीं शिक्षक की मदद ज़रूरी हो। प्रयोगों के स्वरूप में विकास का क्रम लगातार जारी रहा और अभी भी इन पर विमर्श जारी है। इस प्रयास में बच्चों के साथ काम करने वाले व स्थानीय परिस्थिति जानने वाले शिक्षकों की बहुत बड़ी भूमिका थी। साक्षात्कार में कई लोगों ने इसका ज़िक्र किया व अपने योगदान का उल्लेख करते हुए शिक्षकों के लिए इस तरह के मौक़ों को कई कारणों से आवश्यक बताया। प्रयोग की प्रमुखता व अनिवार्यता के सन्दर्भ में यह भी सामने आया कि इस तरह प्रयोग करवाने व उस पर चर्चा करवाने ने उनके ज़ेहन में जगह बना ली है, जो आज भी बरक़रार है।

स्वैच्छिक भागीदारी

यह भी महत्वपूर्ण है कि इस कार्यक्रम में स्वैच्छिकता एक बड़ा पुट था। इसे कई लोगों ने अलग–अलग ढंग से व्यक्त किया। स्वैच्छिकता के पुट की वजह से इसमें कई तरह के लक्ष्यों का समागम हो पाया। इसके अलावा कार्यक्रम के शैक्षिक लक्ष्य का संकीर्णता से परिभाषित नहीं होना इस भागीदारी का कारण बना। विजय वर्मा ने सुशील जोशी द्वारा लिखित पुस्तक *जश्न–ए–तालीम* के प्राक्कथन में लिखा है कि दिल्ली समूह की कल्पना उस दिशा में नहीं थी, जिस दिशा में यह 1983 में और फिर 1988 में बढ़ा।[2] हालाँकि बहुत–से लोगों को इस दिशा में कोई नयापन नहीं लगता।

> कार्यक्रम का स्रोत दल कई तरह की पृष्ठभूमि से था। इसमें दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राध्यापक व उनके शोध–विद्यार्थियों के अलावा टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ़ फण्डामेंटल रिसर्च (टी.आई.एफ.आर.), मुम्बई, मध्य प्रदेश के महाविद्यालयों के प्राध्यापक, कई अन्य वैज्ञानिक संस्थानों के लोग, किशोर भारती व मित्र मण्डल केन्द्र के कार्यकर्ताओं के अलावा मध्य प्रदेश के स्कूल–शिक्षकों का एक बड़ा दल शामिल था। इस संरचना में एक ओर विज्ञान के सभी घटकों यथा भौतिकी, रसायन, जीवविज्ञान, भूविज्ञान आदि में विशेषज्ञता रखने वाले लोग शामिल थे, तो दूसरी ओर शिक्षक थे जो स्कूलों में कई वर्षों से पढ़ा रहे थे और जिन्हें स्कूल की परिस्थितियाँ व सम्भावनाएँ पता थीं। इसके साथ–साथ एक ऐसा समूह था जो इसके व्यवस्थित क्रियान्वयन को ले कर शासन व व्यवस्था के ढाँचे से बातचीत करने को तैयार था व गाँव में विकास के मुद्दों को ले कर, उसी परिस्थिति में रह कर उसे समझने व जूझने को भी तैयार था। इन तीनों तरह के लोगों से मिल कर स्रोत दल का गठन हुआ। हालाँकि स्रोत दल कोई बँधा हुआ, सीमित व परिभाषित दल नहीं था, फिर भी इसमें शामिल लोगों में व उसकी कार्य–पद्धति में एक ऐसी अलिखित किन्तु मान्य संस्कृति थी जिसके इर्दगिर्द इसमें लोग आ कर जुड़ते थे। इन सदस्यों की प्रतिबद्धता, ज़िम्मेदारी, भागीदारी अलग–अलग थी परन्तु सभी लोग इसमें स्वेच्छा से थे और स्वेच्छा से ही अपना समय इसमें लगाते थे। काम का दायरा बदलने से सक्रिय स्रोत दल में शामिल लोग बदलते रहे, किन्तु सभी लोगों का कार्यक्रम से व एक–दूसरे से जुड़ाव बना रहा। इस दल की संस्कृति में ज्ञान व तर्क का भी आदर था और अनुभव का भी। बराबरी व भागीदारी की भावना के बावजूद इसमें शामिल शिक्षकों में विश्वविद्यालय के ओहदों का आतंक व

> उनके साथ होने का गर्व भी था। हालाँकि कई लोग जो विश्वविद्यालय से होने के कारण अपने आप को और अपनी भूमिका को अन्य लोगों से ऊँची व विशिष्ट मानते थे, वे ज़्यादा समय इस कार्यक्रम में जुड़े न रह सके। स्रोत दल में सदस्यों के प्रकार में काफ़ी परिवर्तन होते रहे और भागीदारी व तैयारी के ढंग में भी। इससे उनमें अन्तःक्रिया का ढंग भी बदला व आपसी संवाद ज़्यादा बराबरी का होने लगा व कक्षाओं के संचालन में भागीदारी भी बदली। स्रोत दल, इसकी संस्कृति व इसमें लोगों के अनुभव पर अलग से व्यापक अध्ययन करने की आवश्यकता है। चूँकि यह इसमें शामिल सभी लोगों के लिए एक गहरा अनुभव था।

इसके साथ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि बहुत–से लोग, जिनमें कई सारे विज्ञान जानने वालों के अलावा भी हैं, अलग–अलग कारणों व धारणाओं से इसमें शामिल हुए और जैसा उन्होंने चर्चाओं में कहा भी कि इसने उन्हें रचा व गढ़ा और उन पर इसका असर भी अलग–अलग हुआ। इन सब ने कार्यक्रम में अपनी भागीदारी को महत्वपूर्ण माना और कहा कि उन्हें इसमें सीखने व करने के अनेक तरह के मौक़े मिले। किन्तु इनके अलावा कुछ लोग ऐसे भी थे, जो इसमें शामिल होने के लिए तो आये पर उन्हें लगा कि उन्हें इसमें कोई जगह नहीं मिली। फिर भी वैचारिक, सामाजिक, शैक्षणिक व सांस्कृतिक दृष्टिकोण से इतने अलग–अलग क़िस्म के लोग इसमें शामिल हुए कि इस पहलू को खँगालना भी महत्वपूर्ण हो सकता है। हालाँकि इसमें इस पर भी विचार करना होगा कि आनुपातिक दृष्टि से महिलाओं, दलितों व मुस्लिम समुदाय के लोगों की इसके स्रोत दल में भागीदारी इतनी कम क्यों थी? क्या यह शिक्षित समुदाय विशेष तौर पर विज्ञान में 'क़ाबिलियत' रखने वाले लोगों में इन समूहों की कमी के कारण था अथवा कार्यक्रम की रचना में ही कुछ ऐसे पहलू थे जो इन्हें बाहर रखते थे?[3]

समेकन

कुल मिला कर लगभग 35 वर्ष तक चले इस कार्यक्रम ने बहुत कुछ हासिल किया, परन्तु कई मामलों में इसकी समझ व प्रयास अपरिपक्व रहे। फिर भी इसने कई शैक्षिक सिद्धान्तों को सरकारी ढाँचे में और उसी की मदद से सम्भव बनाया। इसके तहत कार्यक्रम की रचना के पहलुओं में अनेक लोगों की भूमिका है और कई ऐसे पहलू हैं जो अलग–अलग समय पर आने वाले लोगों की समझ व व्यवहार के कारण जुड़े। इनमें से एक प्रशिक्षण–कार्यक्रमों में अन्तःक्रिया (transaction) का मसला है, जो काफ़ी समय बाद एक पहलू में बुनियादी रूप से बदला। शुरू से ही अलग–अलग पृष्ठभूमि के लोगों के जुड़ने के कारण व स्वीकृत सिद्धान्तों को अलग–अलग ढंग से समझने

के कारण सत्रों की रचना व अन्तःक्रिया का ढंग (transaction) अलग–अलग था। किन्तु इसमें एक बात प्रमुख थी और वह थी स्रोत समूह के किसी एक व्यक्ति की प्रोफ़ेसरनुमा भूमिका व बाक़ी सब की लगभग प्रयोगशाला सहायकों जैसी भूमिका। उसे ही पता होता था कि वह प्रशिक्षण–सत्र किस प्रकार से संचालित करेगा व कौन–से प्रयोग होंगे। सारे निर्देश वही देता था/देती थी। और कई बार नये प्रयोग करने को दे देता था/दे देती थी। चूँकि स्रोत दल के सहयोगी सदस्यों की इस सब में तैयारी नहीं होती थी, अतः वह टोलियों में प्रयोग व चर्चा में अकसर कोई ख़ास योगदान नहीं दे पाते थे। इसके अलावा इस तरीक़े में अक्सर शिक्षकों के बीच संवाद नहीं हो पाता था व प्रयोग भी पूरी गम्भीरता से नहीं हो पाता था। चूँकि स्रोत दल के सहायक सदस्यों को यह भी पता नहीं होता था कि पूरी योजना क्या है और उन्हें टोलियों में क्या करना है, अतः वे पूरी भागीदारी भी नहीं कर पाते थे। धीरे–धीरे नये लोगों के आने व उनके प्रशिक्षण–सत्रों के सदस्य व संचालनकर्ता बनने से कई परिवर्तन आये। उनके इन कार्यशालाओं में भाग ले कर फीडबैक देने से व अपनी व अन्य लोगों की ज़्यादा उद्देश्यपूर्ण भागीदारी की माँग करने से इस प्रशिक्षण की तैयारी में व कक्षा–प्रक्रिया में काफ़ी बदलाव आया। इसमें टोली में होने वाले कार्य में ज़्यादा समय लगने लगा और सामूहिक समेकन ज़्यादा पैना व सुनियोजित बना। इस परिवर्तन का कई तरह से लाभ हुआ।

इस कार्यक्रम के विकास के साथ–साथ कई तरह के व्यवस्थात्मक बदलाव भी ढाँचे में हुए। विज्ञान–शिक्षा में शैक्षिक व प्रशासनिक उन्नयन के लिए कई तरह के नये मंच, प्रथाएँ व कार्य–प्रणालियाँ व कई नये प्रावधान बने और ढाँचे में लागू हुए। इसमें सब से प्रमुख थे – प्रशिक्षण में शिक्षकों की भागीदारी के लिए नियमित यात्रा–भत्ता, ठहरने की ठीक–ठाक व्यवस्था, अर्जित अवकाश की पात्रता, किट–सामग्री, अपलेखन की व्यवस्था आदि जैसे सभी प्रावधान व उनके लिए प्रसारित प्रपत्र। इस कार्यक्रम से मिली सीख कई तरह से अलग–अलग जगहों पर पहुँची और उसने शिक्षा के प्रयासों पर प्रभाव डाला और उन्हें दिशा भी दी। आज भी कई तरह से शैक्षिक संस्थानों, राज्य व राष्ट्रीय दस्तावेज़ों के विचारों में इस कार्यक्रम की समझ की गूँज मौजूद है।

इस कार्यक्रम ने यह दिखाया कि बड़े ढाँचों में भी लोग स्वेच्छा, प्रेरणा व जोश से शिक्षा को बेहतर करने के प्रयास में कार्य कर सकते हैं और यह सरकारी स्कूल के ढाँचे में हो सकता है। किन्तु सृजनात्मकता और उत्साह व लगन से जुट जाने की यह इच्छा अतिरिक्त मानदेय भत्तों अथवा सरकारी आदेशों से नहीं आयेगी। इसके लिए लोगों के बीच हायरारकी प्रदर्शन से मुक्त पारस्परिक सम्बन्ध, स्नेह व अपनापन बनने और बनते रहने की ज़रूरत है। एक ऐसा परिवर्तनगामी समूह चाहिए जो यह

कर पाने के लिए चिन्हित किया गया हो, स्वीकारा गया हो और जो परिवर्तन के प्रयास की भावना को समझता व मानता हो। इसके साथ ही उसे इसके सामाजिक व राजनीतिक पहलुओं का एहसास व इनसे जूझने की इच्छा व समझ हो। यह समूह सरकारी ढाँचे में भी हो सकता है। हालाँकि हायरारकी प्रदर्शन को हल्का करने के लिए इसका कुछ हिस्सा ढाँचे से बाहर होना अच्छा है। यह बाहर का समूह इस प्रयास की भावना की निरन्तरता को भी बनाये रखने में मदद करेगा। यदि सरकारी ढाँचे में ही किसी तरह से इस प्रकार के रिश्तों की सम्भावना व किसी ध्येय के लिए लगन से स्थायी प्रयास किया जा सके तो सरकारी ढाँचे में वह सब कर पाने की क्षमता और सम्भावना है जो संविधान में निहित है। किन्तु प्रश्न यह ज़रूर है कि क्या ऐसे संयोजित प्रयास की सम्भावना कभी भी बन सकती है और इसमें ढाँचे के साइज़ व सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का क्या योगदान है व उससे क्या रुकावटें हैं?

इस सब के बावजूद बहुत–से लोगों ने कहा कि इस कार्यक्रम ने विज्ञान शिक्षकों के अलावा बाक़ी सभी शिक्षकों, पालकों व समाज के मत–निर्माताओं के साथ कोई काम नहीं किया और उन्हें कार्यक्रम के बारे में समझाने की कोई कोशिश नहीं की। इसके अलावा ढाँचे में हस्तक्षेप का जो फ्रेमवर्क लिया गया, वह अधूरा था। उसमें न तो आम लोगों की व पालकों की कुछ भूमिका थी और न ही कोई भागीदारी। कार्यक्रम ने उन्हें शिक्षा के सुधार की प्रक्रिया में शामिल ही नहीं किया और हमेशा उनके प्रश्नों व शंकाओं को विरोध व असहमति के रूप में ही देखा।

इसके अलावा विज्ञान क्या है, इसकी शिक्षा कैसे होनी चाहिए और इसमें क्या हो, यह भी वैज्ञानिकों व किताबों का ही विज्ञान था। इसमें आम लोगों के विज्ञान, उनके सवाल, सोचने के ढंग व समझ के लिए कोई जगह नहीं थी। यानी न तो शिक्षा की प्रक्रिया और न ही विज्ञान की समझ में समाज की कोई जगह थी। इसी तरह से कार्यक्रम की रचना व क्रियान्वयन में जेंडर, जाति, वर्ग व पितृसत्ता की समझ शामिल नहीं थी। उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। इन सभी कारणों की वजह से यह कह सकते हैं कि कार्यक्रम के संचालन में परिवर्तन के लिए मददगार सम्भावनाओं की समझ का अभाव था, जिससे भी यह परिवर्तन स्थायी नहीं बन पाया। और इसी वजह से यह, राजनीतिक–आर्थिक स्थिति और नीति–दस्तावेज़ों में परिवर्तन से शिक्षा में हुए हस्तक्षेप व सरकारी ढाँचे द्वारा अलग–अलग ढंग से शुरू किये गये सुधार के बहुत–से प्रयासों से अपनी अलग पहचान नहीं बना पाया।

हालाँकि इन नये प्रयासों में न तो वह भावना थी और न ही वह जज़्बा, जो हो.वि.शि.का. में था। फिर भी इनमें व हो.वि.शि.का. में सतही स्तर पर अन्तर नहीं दिखता था। अतः यह बहुत–से प्रयासों में से एक बन कर रह गया।

इसके अलावा कई और कारण हैं जो ग़ैर–सरकारी संस्थानों के बदलते स्वरूप से जुड़े हैं। नब्बे के दशक के आख़िर से ही सरकार के साथ मिल कर कार्य करने वाली ग़ैर–सरकारी संस्थाओं की संख्या बहुत बढ़ गयी। अलग–अलग समझ से कार्य कर रही यह संस्थाएँ शिक्षा के नज़रिये व स्कूल के ढाँचे की व्यवस्थागत रचना व लोगों के बीच की हायरारकी को बरक़रार रखते हुए शासन के साथ उसके लिए ज़्यादा अनुकूल शर्तों पर काम करने के लिए तैयार थीं व शासन से ऐसे मौक़े के लिए माँग व आग्रह भी कर रही थीं। चूँकि ये ग़ैर–सरकारी संस्थाएँ शासन के निर्देशानुसार, उनकी बनायी योजना व कार्यप्रणाली के अनुसार कार्य करने को तैयार थीं और शिक्षा की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अधिकारियों ने शिक्षा के ढाँचे में अपने विचारों व फ़ितूरों को लागू करने की लगातार बदली मुहिमें कई राज्यों में शुरू कर दी थीं। अतः हो. वि.शि.का. के तार्किक आधारों की माँग वाले आग्रह के लिए शिक्षा–प्रशासकों के पास कोई धैर्य नहीं था। शिक्षा में प्रोजेक्ट व मिशन मोड में निवेश (जिसका कुछ हिस्सा विदेशी संस्थानों से था) के कारण इस तरह के काम करने वाले, स्वैच्छिक शैक्षिक संस्थानों की जगह 'वेंडर' के रूप में पहचाने जाने लगे और कार्यक्रम का संचालन समूह भी इसी श्रेणी में डाला जाने लगा। और इसी वजह से शासन के लिए इस समूह की शैक्षिक समझ के दबदबे को अनदेखा करना सम्भव बना। विदेशी निवेश के नये–नये ग़ैर–सरकारी समूहों को शामिल करने के आग्रह व मिशन मोड में परिवर्तन करने के दबाव ने इस तरह के धीमे प्रयासों को हाशिए पर ला दिया व शिक्षा–व्यवस्था में यह सब बहुत–से छोटे प्रयासों में से एक बन कर रह गया। इसके अलावा, इसमें छिपी लोकतान्त्रिक प्रक्रिया को स्वीकार करना भी शासन व प्रशासन के लिए हमेशा से ही मुश्किल था, अतः यह कार्यक्रम आघात योग्य बन गया। इस सब के कारण ही शासन द्वारा इस कार्यक्रम को ऐच्छिक बना पाना सम्भव भी हुआ। कार्यक्रम के साथ जुड़े लोगों से बातचीत से उभरे इस विचार–मंथन से यह समझ आया कि हालाँकि कार्यक्रम में बहुत कुछ सोचा गया व किया गया, इसका काफ़ी असर भी हुआ और इससे अभी भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है किन्तु यह भी सही है कि इसमें कई पहलू तुलनात्मक दृष्टि से छूटे ही रह गये। जैसे, इसमें सभी लोगों की भागीदारी व मिल्कियत की जगह बनाने के बारे में नहीं सोचा गया। सामाजिक, आर्थिक, लैंगिक व अन्य विषमताओं के मद्देनज़र कार्यक्रम के स्वरूप, रचना व क्रियान्वयन पर वैचारिक मंथन नहीं हुआ। सामान्य लोगों की भागीदारी व उनकी शैक्षिक अभिव्यक्ति की सम्भावना के लिए शायद ऐसे प्रयास की आवश्यकता है जो शिक्षा के दर्शन (भाषा, संस्कृति, स्थानीय ज्ञान), समाजशास्त्र, मानवीय व सीखने के प्रश्नों से और ज़्यादा गहराई से जूझते हों। हालाँकि जैसा कि सी. एन. सुब्रह्मण्यम ने अपने साक्षात्कार में कहा कि अब यह भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऐसे प्रयास की इस रूप में एक बड़े क्षेत्र में हो पाने की सम्भावना बहुत ही कम या नगण्य ही है।

शिक्षा–विभाग से रिश्ता

हो.वि.शि.का. पर चर्चा, ढाँचे के साथ इसके सम्बन्ध के बारे में बात किये बिना अधूरी ही है। यह इस कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण पहलू था कि किसी सिविल सोसाइटी संस्था की सरकार के साथ इस तरह की भागीदारी, इतने लम्बे समय चली। इस भागीदारी के विकास के चरणों व जटिलताओं पर एक सम्पूर्ण शोध की आवश्यकता है। क्योंकि यह शायद उस समय की राजनीतिक व प्रशासनिक ही नहीं, वरन सामाजिक स्थितियों के कारण सम्भव हो पाया (अनिल सदगोपाल, 2000)। जिन साक्षात्कारों में इस पर टिप्पणी हुई, उन सभी में स्पष्ट राय थी कि इस तरह की भागीदारी आज सम्भव नहीं है। इसके अलावा इस भागीदारी के स्वरूप व प्रभाव के बारे में कई बातें स्पष्ट रूप से उभरीं भी। पहली तो यह है कि इसने कार्यक्रम के स्वरूप, उसकी रचना, कार्य–पद्धति, उसके विकास के विस्तार के साथ–साथ इसमें काम कर रहे लोगों पर भी गहरा असर डाला। इस अन्तःक्रिया ने जहाँ एक ओर तो ढाँचे में अन्तर्निहित सम्भावनाओं व उसकी ताक़त को उभारा, वहीं यह भी उभारा कि ढाँचे में निर्णय हमेशा तार्किक और व्यवस्थित ढंग से नहीं होते और उसमें हर स्तर पर पहल अथवा प्रतिरोध की सम्भावना है। ढाँचे के साथ संवाद पर हो.वि.शि.का. समूह में लगातार विमर्श भी होता था व कार्यक्रम के प्रारूप को ढाँचे में सामान्य प्रक्रियाओं की तरह डालने का प्रयास भी। सरकारी ढाँचे और हो.वि.शि.का. समूह की अन्तर्क्रिया में विचारों व ढाँचागत सम्भावनाओं की तार्किकता के साथ–साथ व्यक्तिगत पहल, धैर्य, व्यक्तित्व आदि की भी भूमिका थी। समूह के लोगों की उनकी प्रतिबद्धता व प्रकट सरलता के कारण इज़्ज़त भी थी और समूह के गम्भीरता से किये गये गृहकार्य व पक्की तैयारी के कारण उनके सुझावों में तार्किक व प्रशासनिक वैद्यता भी। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में मध्य प्रदेश के शिक्षा–विभाग के हर स्तर से भागीदारी थी। जैसा कि अनिल सदगोपाल ने अपने साक्षात्कार में कहा कि इस कार्यक्रम ने यह दिखा दिया कि सरकारी स्कूलों के ढाँचे में अपूर्व अन्तर्निहित क्षमता है और अगर राज्य चाहे तो वह इस ढाँचे को बेहतरीन, परिवर्तनगामी व विचारों में अग्रणी बना सकता है। इनकी अन्तर्निहित ऊर्जा उजागर होने से यह भी स्पष्ट हुआ कि ऐसी स्थिति बनने पर कोई प्राइवेट शाला इस ढाँचे की शासकीय शालाओं के सामने गुणवत्ता व प्रासंगिकता में टिक नहीं सकेगी। हालाँकि यह दावा कुछ अतिशयोक्ति लग सकता है, किन्तु यह सही है कि इस कार्यक्रम ने कार्य के ढंग पर चिन्तन व उसमें सुधार के लिए एक बड़े पैमाने पर लोकतान्त्रिक विचार–विमर्श के लिए जगह बनायी और शाला व शिक्षकों की ज़रूरतों व दिक़्क़तों से निपटने के लिए क़दम उठाये।

इस कार्यक्रम के दौरान कई नये क़िस्म के चलन व ढाँचे बनाये गये। और जैसे–जैसे ज़रूरत पड़ी, सरकारी ढाँचों ने उसके लिए क़दम उठाने की पहल की। कार्यक्रम की ज़रूरतों के लिए वित्त की कमी कभी सीधे–सीधे अड़चन नहीं बनी। ढाँचे ने इसे उपलब्ध करवाने के रास्ते निकाले, चूँकि निर्णय लेने वाले कुछ लोगों को इसकी ज़रूरतों के यथार्थ पर यक़ीन था। हालाँकि यह कार्यक्रम बहुत–से लोगों की नज़र में किशोर भारती और फिर एकलव्य का ही कार्यक्रम था, लेकिन इसे सम्भव बनाने में सरकारी व्यवस्था के लोगों की पहल व इसके प्रति उनकी प्रतिबद्धता का बड़ा हाथ था। इसे सम्भव बनाने में जहाँ अवधारणात्मक व शैक्षिक स्तर पर वैज्ञानिकों ने मदद की, कक्षा की सम्भावना व उसमें इसे व सन्दर्भ के अनुसार किट को ढालने में जैसे शिक्षकों ने मदद की, वैसे ही इसे व्यवस्था में सम्भव बनाने व चलाये रखने में प्रशासन में अलग–अलग स्तर पर कार्य कर रहे व्यक्तियों ने मदद की। उन्होंने समस्याओं व अड़चनों को समझ कर व व्यवस्था में उपस्थित सम्भावनाओं को पहचान कर रास्ते सुझाये और निकाले। सरकार के हर स्तर पर कार्य कर रहे लोगों में से कुछ के मन में इस कार्यक्रम के लिए गहरा समर्थन था। उन्होंने इसे सम्भव बनाने व साझेदारी को पनपाने में मदद की, हालाँकि, इस प्रक्रिया ने कार्यक्रम के स्वरूप को गढ़ा और बदला भी। इस दृष्टि से देखें तो कार्यक्रम वास्तव में एक साझा प्रयास था क्योंकि इसके स्वरूप की रचना में सरकारी ढाँचे के हर स्तर के लोगों का योगदान था। मुश्किल समय में अलग–अलग स्तर पर सरकारी ढाँचे में पदस्थ व्यक्तियों ने अपने विवेक व अधिकारों का उपयोग विज्ञान की बेहतर शिक्षा की सफलता के लिए व शिक्षकों के सम्मान व पहल को प्रोत्साहन देने के लिए किया।

उन्होंने इसके गुणों को पहचान कर अपने दायरे में ऐसे अहम निर्णय लिये, जिनसे प्रक्रियाओं को स्थापित व विकेन्द्रित करने के प्रयास में मदद मिली। उन्होंने ढाँचे की प्रकृति या ढर्रे के प्रतिकूल ऐसी व्यवस्थाएँ बनाने में मदद की जिसमें सरकारी ढाँचे के अलग–अलग स्तर के लोग बैठकों में दो तरफ़ा विमर्श कर सकते थे। इससे कार्यक्रम के दौरान शिक्षकों को अपने काम में व व्यवस्था में अपने स्थान के प्रति एक नयी सम्भावना दिखी। साक्षात्कार में बहुत–से शिक्षकों ने इस बात को याद किया व रेखांकित किया कि उन्होंने विज्ञान–शिक्षा के बारे में कई अधिकारियों के समूहों को प्रशिक्षित भी किया। हालाँकि भागीदारी में प्रकट रूप में यह साझा कार्यक्रम था, शासन का कार्यक्रम था किन्तु जैसा कि शरद चन्द्र बेहार ने अपने साक्षात्कार में कहा, शासन इसमें एक सुप्त भागीदार था। कुछ एक व्यक्तियों को छोड़ बाक़ी इसमें अनमने ढंग से शामिल थे, वह इसे एकलव्य–किशोर भारती का ही कार्यक्रम मानते थे। हालाँकि शुरुआत में 'रसूलिया विज्ञान' कहलाया जाने वाला यह कार्यक्रम 1978 के बाद

होशंगाबाद विज्ञान बना और इसी पहचान से यह मालवा, बैतूल, नरसिंहपुर और छिन्दवाड़ा भी गया।

कार्यक्रम का एक सिद्धान्त स्थानीय परिस्थिति को आधार बना कर कक्षा–विमर्श रचने का था, किन्तु जिस स्तर से बाद के प्रसार को क्रियान्वयित किया गया या यह प्रसार हो पाया, उसमें स्थानीयता की झलक काफ़ी धूमिल हो गयी। यही बात इसके ढाँचागत विकास में भी है। इस कार्यक्रम के संचालन के तरीक़े को विस्तार से लिपिबद्ध कर एक मैनुअल बनाया गया था। इसे बनाने में 16 शालाओं से शुरू कर होशंगाबाद ज़िले के सभी स्कूलों में कार्यक्रम के व्यवस्थित रूप से संचालन की राह में निकले सभी आदेश व अन्य दस्तावेज़ उपयोग किये गये। ये सब मैनुअल में आने से पहले वहाँ प्रचलन में थे व इन दस्तावेज़ों व आदेशों को बनाने में भी होशंगाबाद के शिक्षा–विभाग की अहम भूमिका थी और यह मैनुअल होशंगाबाद के सम्भागीय अधीक्षक कार्यालय में स्थित शिक्षा–इकाई की मदद से बना था और उनकी पैनी जाँच से गुज़रा था। इस पर ज़िले के संगम केन्द्र स्तर पर भी चर्चा हुई थी। अतः यह मैनुअल होशंगाबाद ज़िले के लोगों के लिए अपना था।

इस मैनुअल का बनना अपने आप में एक उपलब्धि थी क्योंकि इसमें कार्यक्रम के लिए आवश्यक सभी ढाँचों व प्रावधानों का ज़िक्र था। उच्च माध्यमिक शालाओं के व्याख्याताओं व अन्य संस्थानों की पूर्व माध्यमिक शालाओं के विज्ञान–शिक्षकों और संगम केन्द्र के ढाँचे को शैक्षिक समर्थन से ले कर सभी पहलुओं के लिए वित्तीय प्रावधान व अन्य आवश्यक आदेश इसमें सम्मिलित थे। किट व उसकी क्षतिपूर्ति, शिक्षा के ढाँचे के पदों (hierarchy) के विभिन्न स्तरों के बीच संवाद, परीक्षा का वैकल्पिक नज़रिया व तरीक़ा यानी खुली किताब परीक्षा, खुले तार्किक प्रश्नों की जगह अंक–पुनर्निधारण व सैम्पल के आधार पर मार्किंग सिस्टम का विकास, प्रायोगिक परीक्षा, सामूहिक प्रश्नपत्र–निर्माण व मॉडरेशन, लम्बे अनिवार्य प्रशिक्षण, पूर्व माध्यमिक शालाओं की विज्ञान–शिक्षा पर ध्यान देने के लिए ज़िले व सम्भाग स्तर पर विज्ञान–इकाई, संगम केन्द्र पर विशेष शिक्षक की पद–स्थापना का प्रावधान, विज्ञान–कक्षा का बढ़ा समय अन्तराल, कक्षा से बाहर विज्ञान–अध्ययन का प्रावधान और ऐसी सभी अन्य ज़रूरतें एक जगह एकत्रित थीं ताकि कार्यक्रम के फैलाव व उसके स्थायी संचालन में कोई परेशानी न हो, फिर भी इसकी रचना पर कई तरह के सवाल उठते हैं। एक तो यही है कि यह पूरी तरह नहीं सोचा गया कि ऐसे मैनुअल का व्यापक स्तर पर उपयोग कैसे होगा? निर्माण के ही प्रयास के दौरान यह स्पष्ट रूप से सामने आ गया था कि राज्य स्तर, जहाँ से यह प्रसारित हुआ, पर भी इसकी रचना व इसके प्रति प्रतिबद्धता की वैसी भावना व भागीदारी नहीं थी, जैसी होशंगाबाद स्तर पर थी। इसके राज्य स्तर के लिए निहितार्थ क्या हैं और उनके लिए

यह किस तरह लिखा जाये व इसका प्रसार कैसे हो, इस पर राज्य स्तर पर कोई समय नहीं लगाया गया।

राज्य स्तर पर इस दस्तावेज़ का न तो गम्भीर अध्ययन हुआ, न इसमें कुछ संशोधन ही प्रस्तावित किये गये। इसे प्रसारित करने में काफ़ी समय लगाने के बावजूद इसमें अन्य सम्भागों से कोई संवाद नहीं हुआ और न ही उनसे इस पर कोई टिप्पणी माँगी गयी। हालाँकि प्रसारित करने से पहले इसके लिए वित्त विभाग की सहमति ली गयी थी, फिर भी इसमें सम्मिलित व्यवस्थाओं के लिए वित्त विभाग के प्रावधानों में पर्याप्त प्रावधान नहीं थे। अतः भोपाल से प्रसारित होने के बाद भी इसका मूल स्वामित्व होशंगाबाद ज़िले का ही बना रहा। मालवा के अधिकारियों के लिए इस मैनुअल का महत्व व इसकी स्वीकार्यता कितनी बनी, इस पर एक अलग अध्ययन की आवश्यकता है। किन्तु, यह स्पष्ट है कि व्यापक स्तर पर शिक्षा के विचारों को ज़मीन पर प्रतिस्थापित करने के लिए उसे रचने, गढ़ने व उसके क्रियान्वयन में वहाँ के लोगों का स्वामित्व व व्यक्तित्व होना महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। हो.वि.शि.का. समूह ने जाने–अनजाने, शैक्षिक स्तर पर पुस्तक पुनर्लेखन की प्रक्रिया शुरू कर नये ज़िलों के शिक्षकों की भागीदारी व स्वामित्व कुछ हद तक हासिल किया। हालाँकि उसमें स्थानीयता का कुछ नया पुट नहीं जुड़ पाया, क्योंकि कार्यक्रम के क्षेत्र की व्यापकता ने इतनी विविधता उत्पन्न कर दी थी कि स्थानीय विशिष्टता शामिल कर पाना जटिल था। प्रशासनिक स्तर पर कार्यक्रम के ज़िलों व विभाग की थोड़ी व सिर्फ़ उच्च प्राथमिक शालाओं के विज्ञान विषय में होने के कारण यह कभी भी प्रशासन के फोकस का कार्यक्रम नहीं बन पाया। उनके लिए यह एक ऐसा कार्यक्रम था जो चलाया जाना था और उनसे इसमें किसी भी तरह के सृजनात्मक योगदान की अपेक्षा नहीं थी। शिक्षा में परिवर्तन के प्रयास के स्थायित्व व गहराई की सम्भावना के लिए फोकस व भागीदारी के स्वरूप दोनों मसलों पर विचार करने की आवश्यकता है। होशंगाबाद ज़िले में भी इस कार्यक्रम में शुरुआत से जुड़े अधिकारियों की सेवानिवृत्ति के बाद कार्यक्रम के प्रति प्रशासन की भावना में बड़ा परिवर्तन आया, हालाँकि इसमें उन पर अन्य नवाचारी कार्यक्रमों का बोझ भी एक कारण हो सकता है।

दूसरा सवाल ज़्यादा बड़ा है – और वह इस तरह के प्रसारों की सम्भावनाओं व उसके तरीक़े के सन्दर्भ में है। साक्षात्कारों में इसकी कमज़ोरी के बारे में तीन पहलू बार–बार अलग–अलग ढंग से कहे गये। एक तो यह कि यह व्यापक नहीं था। न ही विषय व कक्षा–क्षेत्र में और न ही भौगोलिक क्षेत्र में। दूसरा यह कि इसमें पालकों, समुदाय के नायकों व राजनीतिक ढाँचे से अन्तःक्रिया का कोई प्रावधान नहीं था। उसकी न तो तैयारी थी और न ही उसमें सक्षमता। यहाँ तक कि इसका होशंगाबाद विज्ञान में शामिल शिक्षकों के अलावा बाक़ी शिक्षकों से भी ज़्यादा जुड़ाव नहीं था। कमज़ोरी के

बारे में एक मत यह भी था कि इसकी विशेषताएँ ही इसकी कमज़ोरियाँ थीं और इस तरह के ढाँचागत परिवर्तन के प्रयास को कभी–न–कभी तो असफल होना ही था। यह भी एक ऐसा पहलू है जिसकी ज़्यादा गहरी पड़ताल होनी चाहिए। किन्तु यह स्पष्ट है कि ढाँचे के व्यवहार में ढाँचे से बाहर के लोगों की भागीदारी व दख़ल के कारण इसमें लोकतान्त्रिक व्यवहार आ पाया और उनके ढाँचे के बाहर होने के कारण ही इसकी मुख्य वैचारिक भावना बनी रही। किन्तु इनके बाहर होने के कारण ही ढाँचे ने इसे कभी भी सम्पूर्णता से अपना कार्यक्रम नहीं माना। यह सवाल ज़रूर है कि कार्यक्रम के इस स्रोत के ढाँचे के बाहर होने के कारण ही प्रतिरोध व ग़ैर–अपनापन था अथवा यह लोकतान्त्रिकता की भावना के ढाँचे में घुल–मिल पाने के असम्भावित होने के कारण था। हालाँकि कुछ लोगों ने कहा कि कार्यक्रम के कार्यकारी समूह का अड़ियल हो कर, इसे मौक़ा रहने पर और ज़्यादा व्यापक भौगोलिक क्षेत्र में न ले जाना भी एक कमज़ोरी थी। पर साथ–साथ यह भी कहा गया कि फैलाव के बाद और स्कूलों की संख्या (ख़ास तौर पर प्राइवेट शालाओं) बढ़ने से इसकी पकड़ कम हुई।

हालाँकि यह भी सही है कि मध्य प्रदेश के शिक्षा–ढाँचे में कार्यरत लोगों पर इसके कई पहलुओं का बहुत असर पड़ा और उसके बाद से किसी–न–किसी तरह से महत्वपूर्ण चर्चाओं व प्रशिक्षणों में कुछ शिक्षकों की भागीदारी एक आम प्रक्रिया बन गयी और उनको मिली इज़्ज़त व उनकी बात का वज़न कई गुना बढ़ गया। यह बात ख़ास तौर पर स्थापित हुई कि प्रशिक्षणों व बैठकों में शिक्षकों के चयन, उनको समय पर सूचित करना, उनका स्थल पर स्वागत और उनके लिए ठहरने–खाने का उचित इन्तज़ाम ज़रूरी है। उन्होंने यह भी सीखा कि शैक्षिक कार्यक्रमों में पद–स्थापना नहीं, ज्ञान व समझ ज़्यादा महत्वपूर्ण है और ठहरने आदि की व्यवस्था व अन्य व्यवहार में भी हर स्तर के भागीदारों से एक ही तरह का व्यवहार होना चाहिए, पर यह समझ भी कार्यक्रम के क़रीब के क्षेत्र में ज़्यादा थी और अब शायद कई कारणों से धूमिल होती जा रही है।

सन्दर्भ सूची :

1. (1977)। "दि होशंगाबाद विज्ञान : अ यूनिक एडवेंचर इन रूरल साइंस टीचिंग।" *साइंस टुडे*। https://www.eklavya.in/pdfs/HSTP/HSTP_Science_Today_Article_1977.pdf
2. जोशी, सुशील (2004)। *जश्न–ए–तालीम*। भोपाल : एकलव्य प्रकाशन।

3. सदगोपाल, अनिल (2000)। *शिक्षा में बदलाव का सवाल*। अध्याय 2 व 3। दिल्ली : ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन।

(2018)। शोध के सन्दर्भ में किया साक्षात्कार। अप्रकाशित।

4. **डॉक्यूमेंट्सः**

- **विज्ञान शिक्षा–विभाग क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय (1978)**, होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम का **ज़िला स्तरीय परीक्षण के लिए प्रस्ताव**
- किशोर भारती (1984) अक्टूबर 1983 में हुई बैठक का विवरण, अप्रकाशित
- मध्य प्रदेश शासन (1987) एच. एस. टी. पी. **मैनुअल क्रमांक एफ**–44/87/86/**बी** – 2/20, **भोपाल, दिनांक** 27–7–87
- साँची पुनः निरीक्षण बैठक
- 2004। दीवान, हृदय कान्त; सक्सेना, साधना; अग्निहोत्री, रमा कान्त। होशंगाबाद साइंस टीचिंग प्रोग्राम स्टडी। "रिव्यू एकलव्य।" सम्पादक : रैक्स डी रोज़ारियो, भोपाल : एकलव्य संस्थान। अप्रकाशित स्टडी, एस. आर.टी.टी. द्वारा समर्थित।

5. *a*) सक्सेना, साधना (2006)। "क्वेश्चन्स ऑफ़ एपिस्टमालजी : री–इवैल्यूएटिंग कन्स्ट्रक्टविज़्म एण्ड दि एन.सी.एफ. 2005।" *कन्टेम्परेरी एजुकेशन डायलॉग* 4 (1) मानसून। (साधना ने अपने पेपर में एन.सी.ई.आर. टी के विज्ञान–शिक्षा पर जारी पोजिशन पेपर से उभरती ज्ञान व सीखने के ढंग की समझ व इसके बारे में हो.वि.शि.का. की समझ के बीच भेद को स्पष्ट किया है व इसके लिए कुछ उदाहरण भी दिये हैं।) हिन्दी अनुवाद : कालूराम शर्मा। *खोजबीन*। अंक 9–10। सितम्बर–दिसम्बर, 2009। उदयपुर : विद्याभवन सोसाईटी उदयपुर। पृष्ठ संख्या 47–57। (*http: //www.vidyabhawan.org/Portals/0/Research%20Journal/Khojbin-9-10.pdf*)

b) दीवान, हृदय कान्त (2009)। "निर्माणवाद किस चिड़िया का नाम है?" *खोजबीन*। अंक 9–10। सितम्बर–दिसम्बर, 2009। उदयपुर : विद्याभवन सोसाइटी। पृष्ठ संख्या 33–37।

6. *a*) दीवान, हृदय कान्त (2012)। "कैसी हो विज्ञान की वैकल्पिक कक्षा?" *खोजें और जानें*। अंक 2। जनवरी–जून। उदयपुर : विद्याभवन सोसाइटी। पृष्ठ संख्या 14–19।

b) दीवान, हृदय कान्त (2002)। "साइंस टीचिंग : कन्सट्रक्टिंग एन आलटर्नेटिव, इशुस इन प्राइमरी एजुकेशन।" एडिट सिल। जनवरी–मई 2002। दिल्ली। पृष्ठ संख्या 10–13।

7. *a*) दीवान, हृदय कान्त (1995)। "क्यों करें प्रयोग?" *सन्दर्भ* 4। मार्च–अप्रैल 1995।

b) दीवान, हृदय कान्त। ''वाय ए डिफरेंट एप्रोच टू साइंस टीचिंग। *वायसेज़ ऑफ़ टीचर्स एण्ड एजुकेटर्स*। वॉल्यूम VI, इशू II, एन.सी.ई.आर.टी.। फरवरी 2018, दिल्ली, ऑनलाइन।

8. मदान, अमन। प्रेम व विरोध की संस्कृति। कन्स्ट्रक्शन ऑफ़ नॉलेज पर विद्याभवन सोसाइटी में आयोजित सेमिनार में प्रस्तुत पर्चा। 16 अप्रैल, 2004 उदयपुर। प्रोसेडिंग ऑफ़ सेमीनार ऑन कन्स्ट्रक्शन ऑफ़ नॉलेज। पृष्ठ 41–47 ।

9. सक्सेना, साधना एण्ड महेन्द्रु, कमल (2010)। *दि टीचर एज़ अ कन्सट्रक्टर ऑफ़ इनोवेटिव पेडागॉजी, इन नॉलेज एण्ड लर्निंग*। एडिट अग्निहोत्री आर. के. एण्ड दीवान, एच. के.। दिल्ली : मैकमिलन। पृष्ठ संख्या : 254–263।

10. कार्यक्रम से गहरे रूप से अलग–अलग ढंग से जुड़े व उसकी कल्पना व संचालन से सम्बन्धित 35 स्रोत व्यक्तियों के अप्रकाशित साक्षात्कार (जिनमें पढ़ाने वाले शिक्षक, अनुवर्तन दल के व्यक्ति व महाविद्यालयों से शामिल सदस्यों के अलावा कार्यक्रम की रचना व कल्पना से जुड़े व्यक्ति जो निर्माण से ले कर ढाँचों के विकास व कार्यक्रम के संचालन में गहरे रूप से शामिल थे।)